प्रकाशक :
रत्ना सागर
महाजन टोली, नं० २
आरा (बिहार)
पिन : ८०२३०१

द्वितीय संस्करण, सन् १९८७ ई०
२००० प्रतियाँ
मूल्य : १५.०० रुपये

मुद्रक :
एकेडेमिक प्रेस
पटना : ८००००६

# आमुख

भारतीय गद्य के इतिहास में प्राकृत-गद्य का विशिष्ट स्थान है। वैसे तो ई० पू० की छठी शती के पूर्व से ही प्राकृत-गद्य के अस्तित्व का अनुमान किया जाता है, लेकिन उपलब्ध सामग्री के आधार पर ई० पू० की तीसरी शती से इसका प्रारम्भ-काल माना जाता है। भारतीय आर्यभाषा-परिवार की प्राचीनतम भाषा वेदों में सुरक्षित मानी जाती है। कालान्तर में, कुछ संस्कार करके वैदिक संस्कृत को लौकिक संस्कृत में परिवर्तित किया गया। प्राच्यभाषाविदों के अनुसार, लौकिक संस्कृत के ही समानान्तर रूप में प्रचलित तत्कालीन जनभाषा 'प्राकृत' के नाम से प्रख्यात हुई। वही प्राकृत देशभेद से अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि विभिन्न नामों और रूपों में ढलकर जनग्राह्य वनी।

प्राकृत के रचनाकारों का मूल उद्देश्य अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं, वल्कि जनजीवन की यथार्थता को चित्रित करना था। लोककल्याण की भावना से अभिभूत प्राकृत के कृतिकारों ने कल्पना-विलास से प्रायः अलग रहकर समाज के हर्ष-विषाद की गहरी अनुभूतियों के माध्यम से लोकजीवन की जटिल एवं विषम समस्याओं का समाधान तो प्रस्तुत किया ही, विभिन्न युगों में प्रतिफलित सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावात्मक एकता का अनुकरणीय आदर्श भी उपन्यस्त किया।

जैसा कहा गया, प्राकृत और संस्कृत दोनों दो भूमियों—लौकिक तथा अतिलौकिक—का प्रतिनिधित्व करते हुए भी समानान्तर-प्रवाहिणी भाषाएँ रही हैं, इसलिए संस्कृत और उससे प्रसूत इतर भाषाओं की गद्यशैली के उद्भव, विकास और विस्तार के परिज्ञान के निमित्त प्राकृत-गद्य का समानान्तर अध्ययन अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य से, महाविद्यालयों के छात्रों के लिए,

प्रस्तुत कृति 'पाइय-गज्ज-संगहो' (प्राकृत-गद्य-संग्रहः) का प्रस्तवन किया गया है। इसमें प्राकृत-भाषा के विकास-क्रम के अनुसार सरल, रोचक तथा शिक्षाप्रद पाठ संकलित किये गये हैं। संकलन के लिए स्वीकृत पाठों में नैतिक एवं सामाजिक कथाओं के अतिरिक्त सिकन्दर और अरस्तू जैसे कुछ ऐतिह्य व्यक्तियों की कथाएँ भी सम्मिलित की गई हैं। इस गद्यसंग्रह में प्राकृत-नाटकों के भी कुछ अंश संकलित हैं; ताकि उनके माध्यम से प्राकृत के मुख्य रूपों के साथ ही मागधी एवं पैशाची-प्राकृत के रूपों से भी छात्रों को परिचित होने का अवसर उपलब्ध हो सके।

मैं पूज्यातिशय मुनि **श्रीकस्तूरविजयजी** के प्रति विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी 'पाइयविण्णाणकहा' से कतिपय छात्रोपयोगी कथाएँ इस कृति में समाकलित की गई हैं।

अन्त में, मैं प्राकृत के सभी प्राध्यापकों एवं अपने प्राकृत-प्रेमी सहृदय मित्रों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनके सौजन्य-सहयोग से इस कृति का समीचीन प्रकाशन हो सका। उन ग्रन्थकारों एवं सम्पादकों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे इस पुस्तक की तैयारी में प्रेरणा और सहायता प्राप्त हुई है।

विश्वास है, प्राकृत-गद्य के क्षेत्र में प्रविविक्षुओं के लिए यह स्वल्प प्रयास अवश्य ही परितोषप्रद होगा।

**महाजन टोली, नं० २** **△ राजाराम जैन**
**आरा : ८०२३०१**

# विषयानुक्रम

## (क) गद्य-खण्ड

## (ख) समीक्षा-खण्ड





# १ .पंच सालिकणाणं सत्ति

रायगिहे नयरे महाधणो धणो सेट्ठी होत्था। तस्स य पयइ-भद्दाए सुभद्दाए गेहिणीए चउरो पुत्ता—धणपालो, धणदेवो, धणगोवो, धण-रक्खिओ य। सव्वेवि ते सुंदेरं मंदिरं कलाकुसला सोजन्नपुन्ना य। घरिणीओ तेसिं पहाणकुलब्भवाओ कमेणं सिरी, लच्छी, धणा, धन्ना य। ते जणय-पसाएण निच्चं सुहिया विहरंति। अन्नया सेट्ठी परिणयवओ परलोगहियं काउकामो चिंतेइ—"एए पुत्ता मए एत्तियं कालं सुहिणो कया, संपयं पुण जइ सुण्हा काइं गिहकज्जाइं चिंतेइ, तो मइ पव्वइएवि सुत्थिया हवंति। का पुण एयासिं गिहचिंताए उचिय त्ति हुं नायं, जा पुन्नाहिया। सा कहं नायव्वा? वुद्धीए। जओ लोयवाओ—"वुद्धी कम्माणुसारिणी होइ।" एमाइ चिंतिऊण सेट्ठिणा पारद्धा तेसिं वुद्धीए परिच्छा। पवत्तिओ गिहे ऊसवो। निमंतिओ तासि-मप्पणो सयणवग्गो, भोयाविओ सगोरवं।

भुत्तुत्तरे य सुहनिविट्ठो चित्तसालिगाए। संमाणिओ कुसुमविलेवण-तंबोलाइणा। तस्समक्खं च धणेणाहूया सुण्हाओ, पंच पंच सालिकणे दाऊण भणियाओ य—'एए सम्मं पालेयव्वा। जया य मग्गामि तया मम समप्पियव्वं' ति। तओ विसज्जिओ सयणवग्गो। 'किमेत्थं तत्तं' ति? सवियक्को गओ सट्ठाणं। तत्थ जेट्ठसुण्हाए एते पंचवि उज्झिया, जया जाइस्सइ तया अओ तओ अप्पिसामि त्ति कट्टु। वीयाए एयं चेव चिंतियं। नवरं छोलिऊण मुहे पक्खित्ता। तइयाए सुद्धवत्थे वंधिऊणाभरणकरंडिगाए ठविया, तिसंज्झं पाडियारिया य। चउत्थीए पुण समप्पिया कुलहरे, पत्ते पाउसे वविया, उक्खया य, पडिउक्खया य कया। तेसिं पढमवरिसे जाओ कुलओ। वीए वरसे आढगं। तइयवरिसे खारि। चउत्थे कुंभा। पंचमए कुंभसहस्साणि।

पुणोवि सयणसमवायपुव्वं मग्गिया जेट्ठसुण्हा। तीए वि किच्छेण सरिऊण समप्पिआ कुओ वि पंच कणा। सवहसावियाए अन्ने एए त्ति साहिओ

सब्भावो। वीयाए वि एव चेव। नवरं ते मए छोल्लिऊण भुत्त त्ति। तइयाए गंठिवद्धा चेव समप्पिया, किर मए एवं चेव रक्खिय त्ति। चउत्थीए कुंचियाओ समप्पिऊण भणियं—"मम जणयगिहेसु चिट्ठंति। सगडाइपेसणेण आणावेउ ताओ त्ति।" सेट्ठिणा भणियं, पुत्ति ! कीस तए एवं कयं ? तीए भणियं—"ताएण समाइट्ठं पालेयव्वा एए, ते एवं चेव सम्म पालिया भवंति। तओ सेट्ठिणा नियाहिप्पायं साहिऊण भणिया तव्वंधुणो, किमेत्थ उच्चिय त्ति ?

तेहिं भणियं—"तुब्भे चेव वुद्धिनिउणा पमाणं।" सेट्ठिणा वुत्तं—"जेट्ठा उज्झणसीला, ता जं किंचि मज्झगिहे छारछगणकयवराइ उज्झियव्वं तत्थ एयाए अहिगारो। जं किंचि रंधणकंडणसोहणाइ तंमि वीयाए निओगो। तइया भंडागारसामिणि। चउत्थी सव्वाहिगारिणी, एयाए आएसेण सेसाहिं हिंडियव्वं। एवं चेव एयाओ सुहभाइणीओ भविस्संती त्ति जायमणुमयमेयं सव्वेसिं। तप्पभिइ तासिं नामपसिद्धी जाया—उज्झिया, भोगवई, रक्खिया, रोहिणी त्ति। जायं च सेट्ठिघरं सुत्थं। तओ सलाहिओ सेट्ठी लोएण। तेणावि कयं हियइच्छियं परलोगहियं ति। एरिसो दीहदंसी धम्मारिहो त्ति।

●

## २. रमणीए पराभूअ-सिकंदरस्स कहा

दुसहस्सवासाओ पुव्वं गीसविसए साहसिओ महासूरो सिकंदरो नाम महाराया आसि। वालत्तणाओ आरब्भ तस्स अज्झावगो रायनीइ-वियक्खणो सम्मग्गदंसगो 'एरिस्टोटलो' नाम असाहारणो विउसवरो गुरु अहेसि। सो सिकंदरो सया गुरुसेवापरो आणाए वट्टमाणो जोव्वणे वि चत्तकामभोगाहिलासो परंगणासु वि दिट्ठिं अकुणंतो, केवलं जस-कित्ति-विजयकंखिरो गुरुणो पहावेण अणेगदेसविजयं कासी। वीसपसिद्धो सो एगया सव्वदिसाविजयं काउं इच्छंतो पवलसेणापरिवरिओ गुरुणा सह नियनयराओ निग्गओ।

मग्गे खुहापिवासा-परिस्समं अगणंतो पवलूसाहजुओ दूसहेज्ज-नरिंदवग्गे जयंतो कमेण इराणदेसे समागओ, तत्थ काओ महानयराओ वाहिरं सिविरं

ठविअ सयं उज्जाणमज्झे भव्वपासाए ठिओ। एगया आसारूढो सो गिरि-सिहरमालालंकिय-विविहपएससोहं निरिक्खंतो अग्गओ गच्छमाणो नियरूव-निज्जिअदेवंगणं महरिसीणं पि चित्तक्खोहकारिणिं एगं सुंदरिं पासेइ। सा अच्चब्भुयरूवा सुंदरी त्ति ससिणेहनयणकडक्खेहिं ताडित्ता कामविसयविसमुच्छियं करेइ। सो वि कामग्गहगसिओ तं चिय पासेमाणो सवलो वि विमूढमणो अग्गओ गंतुं असमत्थो तत्थच्चिय निच्चलो ठिओ। सा वाला विमोहित्ता नियट्ठाणे गया। समीववट्टिणा गुरुणा सव्वा एव तस्स चेट्ठा निरिक्खिया। सो वि नरिंदो गुरुं दट्ठूण जायक्खोहो पुणरवि सावहाणचित्तो संजाओ।

एगया नियपवलसेणामज्झे उवविट्ठो सो सिकंदरो मंतिसेणावइ-पमुहसुहडवराणं अग्गओ नियपरक्कमवत्तं कहेइ, तम्मिय काले तस्स गुरु तत्थ समागंतूण सहासमक्खं तं अवहेलेइ—"जं विजइक्करसियाणं पुरिसाणं इत्थी-रूवावलोगणं पि भयकरं, जाओ दंसणमेत्ताओ वीरियं हणेइरे, हलाहलमिव कज्जं कुणंति। वीरपुरिसाण नरिंदाणं च नरगदुवारसमा सा सत्थेसु गणिआ, तासिं सुंदेरं पि विसमविसाओ व महाभयजणगं।" एवं अवहिलित्ता नियावासे गओ।

सो महानरिंदो वालत्तणाओ गुरुस्स उवगारं सुमरंतो सहासमक्खं एवं निंदिओ गरिहिओ वि मउणेण अहोदिट्ठिं काऊण सव्वं सहेइ। किंतु मणंमि अच्चंतदूमिओ विविहविगप्पे कुणंतो कियंतं कालं तत्थेव ठाऊण सहं विसज्जित्ता नियपासाए आगओ। तत्थ वि खणं दिट्ठसुंदरीए सुंदरयं, खणं अप्पणो निव्वलयं, खणं गुरुओ दढिमं वियारंतो एवं निण्णयं करेइ—'कयावि तीए रमणीए मुहं न पासेमि' त्ति नियचित्तं थिरीकरेइ। तह वि अणाइकाल-मोहब्भासेण इंदियाणं च पवलत्तणेण निव्वलस्स तस्स चित्ते सच्चिय रमणी आगच्छइ।

तया सो तं चिय रमणीरूवं झायंतो विम्हरियनियकज्जो सहसा निय-मासरयणं आरोहित्ता तीए सुंदरीए घरंमि समुवागओ। सा वि सिकंदरं पासित्ता अच्चंतहरिसचित्ता तं सक्कारेइ सम्माणेइ य। तया सो संभरियगुरुवयणो

'हा ! अहं किं करेमि ? नियरज्जाओ जगज्जयणपिवासाए निग्गओ हं एईए रमणीए पराइओ, मज्झ सव्वं नट्ठं, लोगा वि किं मं वइस्संति ? अलाहि एयाए।'—एवं वियारित्ता पच्चागंतुं पवट्टइ।

तया सा सुंदरी इंगियागारेण तस्स मणोभावं जाणित्ता कहेइ—"किं पच्छा गच्छेह ? अत्थ आगमणे तुमं को निवारेइ ? सच्चं मम कहेह, हं तु नियरूव-मइ-कला-संपयाए महरिसीणं पि चित्तं खोहेउं समत्था। मम अग्गओ सो वरागो को ? खणेण तस्स गव्वं विणासेमि। अहं वीसमोहिणी इराण-नरिंदपुत्ती अम्हि, मज्झ चरणेसु महापुरिसा वि निवडंति, तया सो तुम्हाणं निवारगो को ?" सिकंदरस्स गुरूणं उवरि अवियला सद्धा, आयरो सम्माणो य अपुव्वो, तह वि तीए रूवासत्तो सो गुरुकयनियतिरक्कारवुत्तंतं सव्वं कहेइ।

तस्स मुहाओ गुरुकयनारीविसयावमाणं सोच्चा कोहेण अईव पयंडा रोद्दसरूवा संजाया। सा तं पइ वएइ—"हे कुमार ! तुम्ह गुरुणा समत्तत्थीणं सुंदेरस्स सत्तीए साहसस्स य अवमाणं कयं, तेण अज्जाहं पइण्णं करोमि—'जं कल्ले तुम्हाण गुरुं अहं रूवेण सत्तीए साहसेण य मम पायपडणसीलं न काहं, तया अलं मे जीविएणं।' मम नयणवाणपुरओ तस्स वयस्स नाणस्स अणुभवस्स य का गणणा !"

सिकंदरो वएइ—"सो मम गुरु सव्वपोग्गलियसुहाओ परं वट्टइ, सएव अज्झप्पचिंतणपरो धम्मत्थसलिहणतल्लिच्छो कालं गमेइ। तं कावि रूववई सुंदरी चालिउं असमत्था।" तया सा रमणी वएइ—"सो वि किं मणूसो न सिया ? तस्स हिययं किं न ? हियए किं विसयउम्मीओ न जायंति ? कया वि तस्स मयप्पायं हिययं होज्जा; तहवि अहं तस्स हिययं सरेण रूवेण नयण-कडक्खेहिं य सजीवियं सोम्मायं अवस्सं करिस्सं" ति कहित्ता नियकज्जकरण-परा जाया। सिकंदरो वि तीए साहसकम्मं दट्ठुं इच्छंतो नियट्ठाणे समागओ।

बीयदिणंमि पच्चूसकाले तस्स गुरु धम्मसत्थत्थचिंतणिक्कपरो वट्टइ, तया सा सुंदरी अच्चब्भुयवेसधारिणी तस्स उज्जाणे समागंतूण महुरसरेण गाएइ, तीए गानसवणे पसुपक्खिणो वि खणमेत्तं मूढा जाया। तस्स गुरु वि सत्थत्थाई

चिंतमाणो तीए महुरज्झुणीए अक्खित्तो समाणो तग्गीयसवणेण आकड्ढियचित्तो खणंमि वामूढो संजाओ, तस्स य गत्ताइं सिढिलीभूयाइं, चित्तं पि संखुद्धं जायं। मणसा चिंतेइ—'का एसा गाएइ' त्ति निरूवणत्थं वायायणे ठाऊण वाहिरं पासेइ, तया उग्घाडियमत्थयं नियंवयावलंवमाणदीहकेसिं गयगामिणिं मंदं मंदं संचरमाणिं अच्छरगणाणं पि रूवेण पराभवंतिं दिव्वसरेण गायंतिं रमणिज्जरूवं रमणिं पासित्ता जराजज्जरिअदेहो वि जायतिव्वकामाहिलासो मूढमणो सो उज्जाणमज्झे गच्छइ। तत्थ गंतूण तीए रूवसोहं दट्ठूण मयणानलदद्धो सो सुंदरीखंधे हत्थं ठवेइ, सा वि तं पासित्ता चित्तखोहेण हिट्ठम्मि पासेइ। तया सो कहेइ—'अहं तुमं कामेमि, मए सह कामभोगाइं भुंजसु।'

सा वि रमणी ईसिं विहसिअ लज्जं धरंती वएइ—'जइ मम पइण्णं पूरसु, तया अहं अहोनिसं तुमं सेविस्सामि।' तीए रूवविमोहिओ स पुच्छइ—'का तुम्ह पइण्णा?' सा कहेइ—"जइ तुम्हे तुरंगीभूअ चिट्ठेह, घोडगीभूअं तुम्हाणमुवरिं उववेसित्ताणं हत्थे कसं धरित्ता वाहेमि तया जावज्जीवं तुम्ह आणाए वट्टिस्सं।" सो एवं सोच्चा तिव्वरागपासवद्धो तुरंगीभूओ। जया सा तुरंगीभूअं तं आरोहित्ता वाहेइ, तया तीए सण्णापेरिओ सो सिकंदरो तत्थागंतूण तयवत्थं गुरुं पासेइ। सा वि सुंदरी सिकंदरं दट्ठूणं कहेइ—"दिट्ठं मज्झ माहप्पं। मम पुरओ सत्तिमंत्ता वि पुरिसा तणायंति।" विम्हरियगुरुसिणेहो सो सिकंदरो वि पुव्वुत्तं गुरुवायं—"जे इत्थीओ नरगदुवारसमाओ इच्चाइं सुणावित्ता तुम्हाणमुवएसो कत्थ गओ?" त्ति उवहसेइ।

तया गुरु नायपरमट्ठो सिकंदरं कहेइ—"तं हे वच्छ! तुं मोहाओ खलियं मं दट्ठूणं हसेसि, परं तु तुमंमि मए दिण्णं णाणं वियारियं सिया, हिययंमि सुट्ठुत्तणेण धरियं होज्जा, तया एवं न उवहसेज्जा। किं च वियारेसु तुं "जइ एसा रमणी मारिसं वुद्धं धीरं गंभीरं सया नाणज्झाणासत्तं पि एरिसिं अवत्थं काउं समत्था, तया जुव्वणुम्मत्तस्स तुम्ह किं न करिस्सइ? रूवमत्ता एसा सुंदरी किंकरीभूए अम्हे 'मए मइसामत्थेण केरिसं कयं' ति उवहसेइ। एयाए सुंदरीए अग्गओ अम्हे दुण्णि वि मुरुक्ख" त्ति कहित्ता सो गुरु नियावासे

गंतूण पुव्वं पिव झाणमग्गो जाओ। तया सो सिकंदरो सा वि सुंदरी वियारिंति—'एसो किल धीरो गंभीरो तत्तण्णू महापुरिसो अत्थि, एयाणं पुरओ अम्हे अवुहा वालग च्चिय' त्ति।

●

## ३. विउसीए पुत्तबहूए कहाणगं

कालो गओ जो धम्मम्मि सो णेओ सहलो च्चिअ।
निप्फलो सयलो सेसो वहू एत्थ निदंसणं॥

कम्मि नयरे लच्छीदासो सेट्ठी वरीवट्टइ। सो वहुधणसंपत्तीए गव्विट्ठो आसि। भोगविलासेसु एव लग्गो कयावि धम्मं ण कुणेइ। तस्स पुत्तो वि एयारिसो अत्थि। जोव्वणे पिउणा धम्मिअस्स धम्मदासस्स जहत्थनामाए सीलवईए कन्नाए सह पाणिग्गहणं पुत्तस्स काराविय़ं। सा कन्ना जया अट्ठवासा जाया, तया तीए पिउपेरणाए साहुणीसगासाओ सव्वण्णधम्मसवणेण सम्मत्तं अणुव्वयाइं य गहीयाइं, सव्वण्णधम्मे अईव निउणा संजाआ।

जया सा ससुरगेहे आगया तया ससुराइं धम्माओ विमुहं दट्ठूण तीए वहुदुहं संजायं। कहं मम नियवयस्स निव्वाहो होज्जा ? कहं वा देवगुरुविमुहाणं ससुराईणं धम्मोवएसो भवेज्जा, एवं सा वियारेइ।

एगया 'संसारो असारो, लच्छी वि असारा, देहो वि विणस्सरो, एगो धम्मो च्चिय परलोगपवन्नाणं जीवाणमाहारु' त्ति उपएसदाणेण नियभत्ता सव्वण्णधम्मेण वासिओ कओ। एवं सासूमवि कालंतरे वोहेइ। ससुरं पडिवोहिउं सा समयं मग्गेइ।

एगया तीए घरे समणगुणगणालंकिओ महव्वई नाणी जोव्वणत्थो एगो साहू भिक्खत्थं समागओ। जोव्वणे वि गहीयवयं संतं दंतं साहुं घरंमि आगयं दट्ठूण आहारे विज्जमाणे वि तीए वियारियं—'जोव्वणे महव्वयं महादुल्लहं, कहं एएण एयंमि जोव्वणत्तणे गहीयं ?' ति परिक्खत्थं समस्साए पुट्ठं—

'अहुणा समओ न संजाओ, किं पुव्वं निग्गया ?' तीए हियगयभावं नाऊण साहुणा उत्तं—"समयनाणं—कया मच्चू होस्सइ त्ति नत्थि नाणं, तेण समयं विणा निग्गओ।" सा उत्तरं नाऊण तुट्ठा। मुणिणा वि सा पुट्ठा—'कइ वरिसा तुम्ह संजाया ?' मुणिस्स पुच्छाभावं नाऊण वीसवासेसु जाएसु वि तीए 'बारसवास' त्ति उत्तं। पुणरवि 'ते सामिस्स कइ वासा जात' त्ति ? पुट्ठं। तीए पियस्स पणवीसवासेसु जाएसु वि पंचवासा उत्ता, एवं सासूए 'छम्मासा' कहिया। ससुरस्स पुच्छाए सो 'अहुणा न उप्पण्णो अत्थि' ति भणिआ।

एवं वहू-साहूणं वट्टा अंतट्ठिएण ससुरेण सुआ। लद्धभिक्खे साहुंमि गए सो अईव कोहाउलो संजाओ, जओ पुत्तवहु मं उद्दिस्स 'न जाउ' त्ति कहेइ। रुट्ठो सो पुत्तस्स कहणत्थं हट्टं गच्छइ। गच्छन्तं ससुरं सा वएइ—'भोत्तूणं हे ससुर ! तुं गच्छसु।' ससुरो कहेइ—'जइ हं न जाओ म्हि, तया कहं भोयणं चव्वेमि—भक्खेमि' इअ कहिऊण हट्टे गओ। पुत्तस्स सव्वं वुत्तंतं कहेइ—'तव पत्ती दुरायारा असब्भवयणा अत्थि, अओ तं गिहाओ निक्कासय।'

सो पिउणा सह गेहे आगओ। वहुं पुच्छइ—'किं माउपिउणो अवमाणं कयं ? साहुणा सह वट्टाए किं असच्चमुत्तरं दिण्णं ?' तीए उत्तं—'तुम्हे मुणिं पुच्छह, सो सव्वं कहिहिइ।' ससुरो उवस्सए गंतूण सावमाणं मुणिं पुच्छइ—'हे मुणे, अज्ज मम गेहे भिक्खत्थं तुम्हे किं आगया ?' मुणी कहेइ—'तुम्हाण घरं ण जाणामि, तुमं कुत्थ वससि ?' सेट्ठी वियारेइ 'मुणी असच्चं कहेइ।' पुणरवि पुट्ठं—'कत्थ वि गेहे बालाए सह वट्टा कया किं ?' मुणी कहेइ—'सा बाला अईव कुसला, तीए मम वि परिक्खा कया।' तीए हं वुत्तो—'समयं विणा कहं निग्गओ सि ?' मए उत्तरं दिण्णं—"समयस्स—'मरणसमयस्स' नाणं नत्थि, तेण पुव्ववयम्मि निग्गओ म्हि।" मए वि परिक्खत्थं सव्वेसिं ससुराईणं वासाइं पुट्ठाइं। तीए सम्मं कहियाइं। सेट्ठी पुच्छइ—'ससुरो न जाओ इअ तीए किं कहियं ?' मुणिणा उत्तं—'सा च्चिय पुच्छिज्जउ, जओ विउसीए तीए जहत्थो भावो नज्जइ।'

ससुरो गेहं गच्चा पुत्तवहुं पुच्छइ—'तीए मुणिस्स पुरओ किमेवं वुत्तं—मे ससुरो जाओ वि न।' तीए उत्तं—"हे ससुर, धम्महीणमणुसस्स माणवभवो पत्तो वि अपत्तो एव, जओ सद्धम्मकिच्चेहिं सहलो भवो न कओ सो मणुसभवो निप्फलो च्चिय। तओ तुम्ह जीवणं पि धम्महीणं सव्वं गयं। तेण मए कहिअं—मम ससुरस्स उप्पत्ती एव न।" एवं सच्चत्थाणे तुट्ठो धम्माभिमुहो जाओ। पुणरवि पुट्ठं—'तुमए सासूए छम्मासा कहं कहिआ?' तीए उत्तं—'सासुं पुच्छह'।' सेट्ठिणा सा पुट्ठा। ताए वि कहिअं—"पुत्तवहूणं वयणं सच्चं, जओ मम सव्वण्णुधम्मपत्तीए छम्मासा एव जाया, जओ इओ छम्मासाओ पुव्वं कत्थ वि मरणपसंगे अहं गया। तत्थ थीणं विविहगुणदोसवट्टा जाया।"

एगाए वुड्ढाए उत्तं—"नारीण मज्झे इमीए पुत्तवहू सेट्ठा। जोव्वणवए वि सासूभत्तिपरा धम्मकज्जम्मि स एव अपमत्ता, गिहकज्जेसु वि कुसला नन्ना एरिसा। इमीए सासू निब्भगा, एरिसीए भत्तिवच्छलाए पुत्तवहूए वि धम्मकज्जे पेरिज्जमाणावि धम्मं न कुणेइ, इमं सोऊण वहुगुणरंजिआ तीए मुहाओ धम्मो पत्तो। धम्मपत्तीए छम्मासा जाया, तओ पुत्तवहूए छम्मासा कहिआ, तं जुत्तं।"

पुत्तो वि पुट्ठो, तेण वि उत्तं—"रत्तीए समयधम्मोवएसपराए भज्जाए संसारासारदंसणेण भोगविलासाणं च परिणामदुहदाइत्तणेण वासाणईपूरतुल्ल-जुव्वणत्तणेण य देहस्स खणभंगुरत्तणेण जयम्मि धम्मो एव सारु त्ति उवदिट्ठो हं सव्वण्णुधम्माराहगो जाओ, अज्ज पंचवासा जाया। तओ वहूए मं उद्दिस्स पंचवासा कहिआ, तं सच्चं।" एवं कुडुंवस्स धम्मपत्तीए वट्टाए विउसीए य पुत्तवहूए जहत्थवयणं सोऊण लच्छीदासो वि पडिवुद्धो वुड्ढत्तणे वि धम्मं आराहिअ सग्गइं पत्तो सपरिवारो।

उवएसो— सीलवईअ दिट्ठंतं ससुराइविवोहगं।
सोच्चा धम्मेण अप्पाणं वासिअं कुण सव्वया॥

●

## ४. कस्सेसा भज्जा

हत्थिणाउरे नयरे सूरनामा रायपुत्तो नाणागुणरयण-संजुत्तो वसइ। तस्स भारिया गंगाभिहाणा सीलाइगुणालंकिया परमसोहग्गसारा। सुमइनामा तेसिं धूया। सा कम्मपरिणामवसओ जणय-जणणी-भाया-माउलेहिं पुढो पुढो वराणं दिन्ना।

चउरो वि ते वरा एगम्मि चेव दिणे परिणेउं आगया परोप्परं कलहं कुणन्ति। तओ तेसिं विसमे संगामे जायमाणे बहुजणक्खयं दट्ठूण अग्गिम्मि पविट्ठा सुमइकन्ना। तीए समं निविडणेहेण एगो वरो वि पविट्ठो। एगो अट्ठीणि गंगप्पवाहे खिविउं गओ। एगो चिआरक्खं तत्थेव जलपूरे खिविऊण तद्दुक्खेणं मोहमहागह-गहिओ महीयले हिण्डइ। चउत्थो तत्थेव ठिओ तं ठाणं रक्खंतो पइदिणं एगमन्नपिंडं भुंजंतो कालं गमेइ।

अह तइओ नरो महीयलं भमन्तो कत्थवि गामे रंधणघरम्मि भोअणं कराविऊण जिमिउं उवविट्ठो। तस्स घरसामिणी परिवेसइ। तया तीए लहुपुत्तो अईव रोइइ। तओ तीए रोसपरव्वसं गयाए सो बालो जलणम्मि खिविओ। सो वरो भोयणं कुणंतो उट्ठिउं लग्गो। सा भणइ—"अवच्चरूवाणि कस्स वि न अप्पियाणि होंति, जेसिं कए पिउणो अणेगदेवयापूयादाणमंतजवाइं किं किं न कुणन्ति। तुमं सुहेण भोयणं करेहि। पच्छा वि एयं पुत्तं जीवइस्सामि।" तओ सो वि भोयणं विहिऊण सिग्घं उट्ठिओ जाव ताव तीए नियघरमज्झाओ अमयरस-कुप्पयं आणिऊण जलणम्मि छडुक्खेवो कओ। बालो हसंतो निग्गओ। जणणीए उच्छंगे नीओ।

तओ सो वरो झायइ—"अहो अच्छरिअं! अहो अच्छरिअं! जं एवंविहजलणजलिओ वि जीविओ। जइ एसो अमयरसो मह हवइ ता अहमवि तं कन्नं जीवावेमि" त्ति चिंतिऊण धुत्तत्तेण कूडवेसं काऊण रयणीए तत्थेव ठिओ। अवसरं लहिऊण तं अमयरसकूवयं गिण्हिऊण हत्थिणाउरे आगओ।

तेण पुण तीए जणयादिसमक्खं चिआमज्झे अमयरसो मुक्को। सा सुमइ कन्ना सालंकारा जीवंती उट्ठिया। तया तीए समं एगो वरो वि जीविओ।

कम्मवसओ पुणो चउरो वि वरा एगओ मिलिआ। कन्नापाणिग्गहणत्थमन्नोन्नं विवायं कुणंता वालचंदरायमंदिरे गया। चउहिं वि कहिअं राइणो नियनियसरूवं। राइणा मंतिणो भणिया जहा—"एयाणं विवायं भंजिऊण एगो वरो पमाणीकायव्वो।" मंतिणो वि सव्वे परोप्परं वियारं कुणंति। न पुण केणावि विवाओ भज्जइ। जओ—

आसन्ने रणरंगे मूढे मंते तहेव दुब्भिक्खे।
जस्स मुहं जोइज्जइ सो पुरिसो महियले विरलो॥

तया एगेण मंतिणा भणियं—"जइ मन्नह ता विवायं भज्जेमि।" तेहिं जंपियं—"जो रायहंसव्व गुणदोसपरिक्खं काऊण पक्खवायरहिओ वायं भंजइ तस्स वयणं को न मन्नइ?" तओ तेण भणियं—"जेण जीविया, सो जम्म-हेउत्तणेण पिया जाओ। जो सहजीविओ सो एगजम्मट्ठाणेण भाया। जो अट्ठीणि गंगामज्झम्मि खिविउं गओ सो पच्छापुण्णकरणेण पुत्तसमो जाओ। जेण पुण तं ठाणं रक्खियं, सो भत्ता।" एवं मंतिणा विवाए भग्गे, चउत्थेण वरेण कुरुचंदाभिहाणेण सा परिणीआ।

●

## ५. ससुरगेहवासीणं चउजामायराणं कहा

कत्थ वि गामे नरिंदस्स रज्जसंतिकारगो पुरोहिओ आसि। तस्स एगो पुत्तो, पंच य कन्नगाओ संति। तेण चउरो कन्नगाओ विउसमाहण-पुत्ताणं परिणाविआओ। कयाई पंचमीकन्नगाए विवाहमहूसवो पारद्धो। विवाहे चउरो जामाउणो समागया। पुण्णे विवाहे जामायरेहिं विणा सव्वे संबंधिणो निय-नियघरेसु गया। जामायरा भोयणलुद्धा गेहे गंतुं न इच्छंति। पुरोहिओ विआरेइ—'सासूए अईव पिया जामायरा, तेण अहुणा पंच छ दिणाइं एए चिट्ठंतु, पच्छा गच्छेज्जा।' ते जामायरा खज्जरसलुद्धा तओ गच्छिउं न इच्छेज्जा। परुप्परं ते चिंतेइरे—'ससुर-गिहनिवासो सग्गतुल्लो नराणं' किल एसा सुत्ती सच्चा, एवं चिंतिऊणं एगाए भित्तीए एसा सुत्ती लिहिआ।

एगया एयं सुत्तिं ससुरेण वाइऊण चिंतिअं—'एए जामायरा खज्जरसलुद्धा कयावि न गच्छेज्जा, तओ एए वोहियव्वा' एवं चिंतिऊण तस्स सिलोग-पायस्स हिट्ठंमि पायत्तिगं लिहिअं—

"जइ वसइ विवेगी पंच छव्वा दिणाइं ।
दहिघयगुडलुद्धा मासमेगं वसेज्जा
स हवइ खरतुल्लो माणवो माणहीणो ॥"

तेहिं जामायरेहिं पायत्तिगं वाइअं पि खज्जरसलुद्धत्तणेण तओ गंतु नेच्छंति । ससुरो वि चिंतेइ—'कहं एए नीसारिअव्वा ? साउभोयणरया एए खरसमाणा माणहीणा संति, तेण जुत्तीए निक्कासणिज्जा ।' पुरोहिओ नियं भज्जं पुच्छइ—'एएसिं जामाऊणं भोयणाय किं देसि ?' सा कहेइ—'अइप्पिय-जामायराणं तिकालं दहि-घय-गुडमीसिअमन्नं पक्कन्नं च सएव देमि ।' पुरोहिओ भज्जं कहेइ—'अज्जयणाओ आरब्भ तुमए जामायराणं वज्जकुडो थूलो रोट्टगो घयजुत्तो दायव्वो ।'

पियस्स आणा अणइक्कमणीअ त्ति चिंतिऊण सा भोयण-काले ताणं थूलं रोट्टगं घयजुत्तं देइ । तं दट्ठूणं पढमो मणी-रामो जामाया मित्ताणं कहेइ—"अहुणा एत्थ वसणं न जुत्तं, नियघरंमि अओ साउभोयणं अत्थि, तओ इओ गमणं चिय सेयं । ससुरस्स पच्चूसे कहिऊण हं गमिस्सामि ।" ते कहिंति—"भो मित्त ! विणा मुल्लं भोयणं कत्थ सिया, एयं वज्जकुडरोट्टगं साउं गणिऊण भोत्तव्वं, जओ—'परन्नं दुल्लहं लोगे' इअ सुई तए किं न सुआ ? तव इच्छा सिया तया गच्छसु, अम्हाणं ससुरो कहिही तया गमिस्सामो ।" एवं मित्ताणं वयणं सोच्चा पभाए ससुरस्स अग्गे गच्छित्ता सिक्खं आणं च मग्गेइ । ससुरो वि तं सिक्खं दाऊण 'पुणावि आगच्छेज्जा' एवं कहिऊण किंचि अणुसरिऊण अणुण्णं देइ । एवं पढमो जामायरो 'वज्ज-कुडेण मणीरामो' निस्सरिओ ।

पुणरवि भज्जं कहेइ—'अहुणा अज्जयणाओ जामायराणं तिलतेल्लेण जुत्तं रोट्टगं दिज्जा ।' सा भोयणसमए जामायराणं तिलतेल्लजुत्तं

रोट्टगं देइ। तं दट्ठूण माहवो नाम जामायरो चिंतेइ—'घरंमि वि एयं लब्भइ, तओ इओ गमणं सुहं, मित्ताणं पि कहेइ—'हं कल्ले गमिस्सं, जओ भोयणे तेल्लं समागयं।' तया ते मित्ता कहिंति—"अम्हकेरा सासू विउसी अत्थि, तेण सीयलं तिलतेल्लं चिअ उयरग्गिदीवणेण सोहणं, न घयं, तेण तेल्लं देइ, अम्हे उ अत्थ ठास्सामो।" तया माहवो नाम जामायरो ससुरपासे गच्चा सिक्खं अणुण्णं च मग्गेइ। तया ससुरो 'गच्छ गच्छ' त्ति अणुण्णं देइ, न सिक्खं। एवं 'तिलतेल्लेण माहवो' वीओ वि जामायरो गओ। तइअचउत्थ-जामायरा न गच्छंति। 'कहं एए निक्कासणिज्जा' इअ चिंतित्ता लद्धवाओ ससुरो भज्जं पुच्छेइ—'एए जामाउणो रत्तीए सयणाय कया आगच्छंति?' तया पिया कहेइ—कयाइ रत्तीए पहरे गए आगच्छेज्जा, कया दुतिपहरे गए आगच्छंति।'

पुरोहिओ कहेइ—'अज्ज रत्तीए दारं न उग्घाडियव्वं, अहं जागरिस्सं।' ते दोण्णि जामायरा संझाए गामे विलसिउं गया, विविहकीलाओ कुणंता नट्टाइं च पासंता, मज्झरत्तीए गिहद्दारे समागया। पिहिअं दारं दट्ठूण दारुग्घाडणाए उच्चसरेण अक्कोसंति—'दारं उग्घाडेसु' त्ति, तया दार-समीवे सयणत्थे पुरोहिओ जागरंतो कहेइ—'मज्झरत्ति जाव कत्थं तुम्हे थिआ? अहुणा न उग्घाडिस्सं, जत्थ उग्घाडिअद्दारं अत्थि, तत्थ गच्छेह' एवं कहिऊण मोणेण थिओ। तया ते दुण्णि समीवत्थियाए तुरंगसालाए गया। तत्थ अत्थरणाभावे अईवसीयवाहिया तुरंगमपिट्ठच्छाइआवरणवत्थं गहिऊण भूमीए सुत्ता। तया विजयरामेण जामाउणा चिंतिअं—'एत्थ सावमाणं ठाउं न उइअं।' तओ सो मित्तं कहेइ—'हे मित्त! अम्हं सुहसज्जा का? इमं भूलोट्टणं च कत्थ? अओ इओ गमणं चिअ वरं।' स मित्तो वोल्लेइ—'एआरिस-दुहे वि परन्नं कत्थ? अहं तु एत्थ ठाहिस्सं। तुमं गंतुमिच्छसि जइ, तया गच्छसु।' तओ सो पच्चूसे पुरोहियसमीवे गच्चा सिक्खं अणुण्णं च मग्गीअ। तया पुरोहिओ सुट्ठु त्ति कहेइ। एवं सो विजयरामो 'भूसज्जाए विजयरामो' वि निग्गओ।

अहुणा केवलं केसवो जामायरो तत्थ थिओ संतो गंतुं नेच्छइ। पुरोहिओ वि केसवजामाउणो निक्कासणत्थं जुत्तिं विआरेइ। एगया नियपुत्तस्स कण्णे किंचि वि कहिऊण जया केसवजामायरो भोयणत्थं उवविट्ठो, पुरोहिअस्स य पुत्तो समीवे ठिओ वट्टइ, तया पुरोहिओ समागओ समाणो पुत्ते पुच्छइ—'वच्छ ! एत्थ मए रुप्पगं मुत्तं, तं च केण गहिअं ?' सो कहेइ—'अहं न जाणामि।' पुरोहिओ बोल्लेइ—'तुमए च्चिय गहिअं, हे असच्चवाइ ! पाव ! धिट्ठ ! देहि ममं तं, अन्नहा तुमं मारइस्सं हं' ति कहिऊण सो उवाणहं गहिऊण मारिउं धाविओ। पुत्तो वि मुट्ठिं बंधिऊण पिउस्स सम्मुहं गओ। दोण्णि ते जुज्झमाणे दट्ठूण केसवो ताणं मज्झे गंतूण—'मा जुज्झह, मा जुज्झह' त्ति कहिऊण ठिओ। तया सो पुरोहिओ हे जामायर ! 'अवसरसु अवसरसु' कहिऊण तं उवाणहेण पहरेइ। पुत्तो वि 'केसव ! दूरीभव दूरीभव' त्ति कहिऊण मुट्ठीए तं केसवं पहरेइ। एवं पिउपुत्ता केसवं ताडिंति। तओ सो तेहिं धक्कामुक्केण ताडिज्जमाणो सिग्घं भग्गो, एवं 'धक्कामुक्केण केसवो' सो अकहिऊण गओ।

तद्दिणे पुरोहिओ निवसहाए विलंबेण गओ। नरिंदो तं पुच्छइ—'किं विलंबेण तुमं आगओ सि।' सो कहेइ—"विवाहमहूसवे चउरो जामायरा समागआ। ते उ भोयणरसलुद्धा चिरं ठिआवि गंतुं न इच्छंति। तओ जुत्तीए सव्वे निक्कासिआ ते एवं—

वज्जकुडेण मणीरामो, तिलतेल्लेण माहवो।
भूसज्जाए विजयरामो, धक्कामुक्केण केसवो ॥"

त्ति, सव्वो वुत्तंतो नरिंदस्स अग्गे कहिओ। नरिंदो वि तस्स बुद्धीए अईव तुट्ठो। उवएसो—

जामायरचउक्कस्स सुणिऊण पराभवं।
ससुरस्स गिहावासे सम्माणं जाव संवसे ॥

●

# ६. सिप्पिपुत्तस्स कहा

पिउणा सिक्खिओ पुत्तो पारं जाइ कलद्धिणो।
वण्णिओ जइ नो होज्जा जह सिप्पिअंगओ॥

अवंतीए पुरीए इंददत्तो नाम सिप्पिवरो अहेसि, सो सिप्पकलाहिं सव्वंमि जयंमि पसिद्धो होत्था। इमस्स सरिच्छो अन्नो को वि नत्थि। एयस्स पुत्तो सोमदत्तो नाम। सो पिउस्स सगासंमि सिप्पकलं सिक्खंतो कमेण पिअराओ वि अईव सिप्पकलाकुसलो जाओ। सोमदत्तो जाओ जाओ पडिमाओ निम्मवेइ, तासु तासु पिया कंपि भुल्लं दंसेइ, कया वि सिलाहं न कुणेइ। तओ सो सुहुमदिट्ठीए सुहुमसुहुमं सिप्पकिरियं कुणेऊण पियरं दंसेइ, पिया वि तत्थ वि कंपि खलणं दरिसेइ, 'तुमए सोहणयरं सिप्पं कयं' ति न कयाइ तं पसंसेइ। अपसंसमाणे पिउम्मि सो चिंतेइ—'मम पिआ मज्झ कलं कहं न पसंसेज्जा?' तओ एआरिसं उवायं कहेमि, जेण पियरो मे कलं पसंसेज्ज।

एगया तस्स पिआ कज्जप्पसंगेण गामंतरे गओ, तया सो सोमदत्तो सिरिगणेसस्स सुंदरयमं पडिमं काऊण, पडिमाए हिट्ठंमि गूढं नियनामंकियचिन्हं करिऊण, तं मुत्तिं नियमित्तद्दारेण भूमीए अंतो निक्खेवं कारेइ। कालंतरे गामंतराओ पिया समागओ। एगया तस्स मित्तो जणाणमग्गओ एवं कहेइ—'अज्ज मम सुमिणो समागओ, तेण अमुगाए भूमीए गणेसस्स पहावसालिणी पडिमा अत्थि।' तया लोगेहिं सा पुढवी खणिआ, तीए पुहवीए गणेसस्स सुंदरयमा अणुवमा मुत्ती निग्गया। तद्दंसणत्थं बहवे लोगा समागया, तीए सिप्पकलं अईव पसंसिरे।

तया सो इंददत्तो वि सपुत्तो तत्थ समागओ। तं गणेसपडिमं दट्ठूणं पुत्तं कहेइ—"हे पुत्त! एसच्चिअ सिप्पकला कहिज्जइ। केरिसी पडिमा निम्मविआ, इमाए निम्मावगो खलु धण्णयमो सलाहणिज्जो य अत्थि। पासेसु, कत्थ वि भुल्लं खुण्णं च अत्थि? जइ तुमं एआरिसीं पडिमं निम्मवेज्ज, तया ते सिप्पकलं पसंसेमि, नन्नहा।"

पुत्तो वि कहेइ—"हे पियर ! एसा गणेसपडिमा मम कया। इमाए हिट्ठंमि गुत्तं मए नामंपि लिहिअमत्थि।" पिआवि लिहिअनामं वाइऊण खिज्जहियओ पुत्तं कहेइ—"हे पुत्त ! अज्जयणाओ तुं एरिसं सिप्पकलाजुत्तं सुंदरयमं पडिमं कया वि न करिस्ससि, जओ हं तव सिप्पकलासु भुल्लं दंसंतो, तया तुमं पि सोहणयरकज्जकरणतल्लिच्छो सण्हं सण्हं सिप्पं कुणंतो आसि, तेण तव सिप्पकलावि वड्ढंती हुवीअ। अहुणा 'मम सारिच्छो नन्नो' इह मंदूसाहेण तुम्ह एआरसी सिप्पकला न संभविहिइ।" एवं सो सरहस्सं पिउवयणं सोच्चा पाएसु पडिऊण पिउत्तो पसंसाकरावणरूवनिआवराहं खामेइ, परंतु सो सोमदत्तो तओ आरब्भ तारिसिं सिप्पकलं काउं असमत्थो जाओ।

उवएसो—

दिट्ठंतं सिप्पिपुत्तस्स नच्चा गुणगणप्पयं।
पुज्जाणं वयणं सोच्चा पडिऊलं न चिंतह ॥

●

## ७. अमंगलियपुरिसस्स कहा

अमंगलमुहो लोगो नेव कोवीह भूयले।
वहाइट्ठेण भूमीसो अमंगलमुहो कओ ॥

एगंमि नयरे एगो अमंगलिओ मुद्धो पुरिसो आसि। सो एरिसो अत्थि, जो को वि पभायंमि तस्स मुहं पासेइ, सो भोयणं पि न लहेज्जा। पउरा वि पच्चूसे कया वि तस्स मुहं न पिक्खंति। नरवइणा वि अमंगलियपुरिसस्स वट्टा सुणिआ। परिक्खत्थं नरिंदेण एगया पभायकाले सो आहूओ, तस्स मुहं दिट्ठं। जया राया भोयणत्थमुवविसइ, कवलं च मुहे पक्खिवइ, तया अहिलंमि नयरे अकम्हा परचक्कभएण हलवोलो जाओ। तया नरवइ वि भोयणं चिच्चा सहसा उत्थाय ससेण्णो नयराओ बाहिं निग्गओ।

भयकारणमदट्ठूण पुणो पच्छा आगओ समाणो नरिंदो चिंतेइ—'अस्स अमंगलियस्स सरूवं मए पच्चक्खं दिट्ठं, तओ एसो हंतव्वो' एवं चिंतिऊण

अमंगलियं बोल्लाविऊण वहत्थं चंडालस्स अप्पेइ। जया एसो रुयंतो, सकम्मं निंदंतो चंडालेण सह गच्छंतो अत्थि, तया एगो कारुणिओ बुद्धिनिहाणो वहाइ नेइज्जंतमाणं तं दट्ठूणं कारणं णच्चा तस्स रक्खणाय कण्णे किंपि कहिऊण उवायं दंसेइ। हरिसंतो जया वहत्थंभे ठविओ, तया चंडालो तं पुच्छइ—'जीवणं विणा तव कावि इच्छा सिया, तया मग्गियव्वं।" सो कहेइ—'मज्झ नरिंदमुहदंसणेच्छा अत्थि' तया सो नरिंदसमीवमाणीओ। नरिंदो तं पुच्छइ—'किमेत्थ आगमणपओयणं ?'

सो कहेइ—"हे नरिंद, पच्चूसे मम मुहस्स दंसणेण भोयणं न लब्भइ, परंतु तुम्हाणं मुहपेक्खणेण मम वहो भविस्सइ, तया पउरा किं कहिस्संति ? मम मुहाओ सिरिमंताणं मुहदंसणं केरिसफलयं संजाअं, नायरा वि पभाए तुम्हाणं मुहं कहं पासिहिरे।" एवं तस्स वयणजुत्तीए संतुट्ठो नरिंदो वहाएसं निसेहिऊणं पारितोसिअं च दच्चा तं अमंगलियं संतोसीअ।

उवएसो—

अमंगलमुहस्सेवं रक्खणं धीमया कयं।
सोच्चा तुम्हे तहा होह मईए कज्जसाहगा॥

●

## ८. गेहेसूरो

एगंमि गामे एगो सुवण्णयारो वसइ। तस्स रायपहस्स मज्झभाए हट्टिगा विज्जइ। सया मज्झरत्तीए सो सुवण्णभरियं मंजूसं गहिऊणं नियघरंमि आगच्छइ। एगया तस्स भज्जाए चिंतिअं—"एसो मम भत्ता सव्वया मंजूसं गहिऊणं मज्झरत्तीए गेहे आगच्छइ, तं न वरं, जओ कयावि मग्गे चोरा मिलेज्जा तया किं होज्जा ?" तओ तीए नियभत्तारो वुत्तो—"हे पिअ! मज्झरत्तीए तुज्झ गिहे आगमणं न सोहणं ति, मज्झभाए कयावि को वि मिलेज्जा तया किं होज्जा ?" सो कहेइ—"तुं मम बलं न जाणासि, तेण एवं

वोल्लेसि। मम पुरओ नरसयं पि आगच्छेज्ज, ते किं कुणेज्जा? ममग्गओ ते किमवि काउं न समत्था। तुमए भयं न कायव्वं।" एवं सुणिऊण तीन चिंतिअं—'गेहेसूरो मम पिओ अत्थि, समए तस्स परिक्खं काहिमि।'

एगया सा नियघरसमीववासिणीए खत्तियाणीए घरे गंतूण कहेइ—"हे पियसहि! तुं तव भत्तुणो सव्वं वत्थभूसं मज्झ अप्पेहि, मम किं पि पओयण अत्थि।" तीए खत्तियाणीए अप्पणो पिअस्स असिसहिअ-निरवेढण-कडिपट्टाइ-सुहडवेसं सव्वं समप्पिअं। सा गहिऊण गेहे गया।

जया रत्तीए एगो जामो गओ, तया सा तं सव्वं सुहडवेसं परिहाय, असिं गहिऊण निस्संचारे रायपहंमि निग्गया। पिअस्स हट्टाओ नाइदूरे रुक्खस्स पच्छा अप्पणं आवरिअ ठिआ। कियंतकाले सो सोण्णारो हट्टं संवरिय, मंजूसं च हत्थेण गहिऊण सो भयभंतो इओ तओ पासंतो सिग्घं गच्छंतो जाव तस्स रुक्खस्स समीवं आगओ, तया पुरिसवेसधारिणी सा सहसा नीसरिऊण मउणेण तं निब्भच्छेइ—'हुं हुं, सव्वं मुंचेहि, अन्नहा मारइस्सं।' सो अकम्हा रुंधिओ भएण थरथरंतो 'मं न मारेसु, मं न मारेसु' इअ कहिऊण मंजूसा अप्पिआ। तओ सा सव्वपरिहिअवत्थग्गहणाय करवालग्गं तस्स वच्छंमि ठविऊण सन्नाए वसणाइं पि कड्ढावेइ। तया सो परिहिअकडिपट्टयमेत्तो जाओ। तओ सा कडिपट्टयं पि मरणभयं दंसिऊण कड्ढावेइ। सो अहुणा जाओ इव नग्गो जाओ। सा सव्वं गहिऊण घरंमि गया, घरदारं पिहिऊण अंतो थिआ।

सो सुवण्णयारो भएण कंपमाणो इओ तओ अवलोएंतो मग्गे आवणवीहीए गच्छंतो कमेण जया सागवावारिणो हट्टसमीवमागओ, तया केण जणेण पक्क-चिब्भडं वाहिरं पक्खित्तं, तं तु तस्स सुवण्णयारस्स पिट्ठभागे लग्गिअं। तेण नायं केणावि अहं पहरिओ। पिट्ठदेसे हत्थेण फासेइ, तत्थ चिब्भडस्स रसं वीआइं च फासिऊणं विआरिअं—"अहो हं गाढयरं पहरिओ म्हि, तेण घाएण सह सोणिअं पि निग्गयं, तम्मज्झे कीडगावि समुप्पन्ना. एवं अच्चंतभयाउलो तुरिअं तुरिअं गच्छंतो घरद्दारे समागओ।

पिहिअं घरद्दारं पासिऊण नियभज्जाए आह्वणत्थं उच्चसरेण कहेइ—'हे मयणस्स मायरे, दारं उग्घाडेहि, दारं उग्घाडेहि।' सा अब्भंतरत्थिआ सुणंती वि असुणंतीव किंचि कालं थिआ। अइवक्कोसणे सा आगच्च दारं उग्घाडिअ एवं पुच्छइ—किं बहुं अक्कोससि ?' सो भयभंतो गिहंमि पविसिअ भज्जं कहेइ—'दारं सिग्घं पिहाहि, तालगं पि देसु।' तीए सव्वं काऊण पुट्ठं—'किं एवं नग्गो जाओ ?' तेण वुत्तं—'अब्भंतरे अववरए चल, पच्छा मं पुच्छ।' गिहस्स अंते अववरए गच्चा निच्चिंतो जाओ। तीए पुणो वि पुट्ठं—'किं एवं नग्गो आगओ ?' तेण कहियं—"चोरेहिं लुंठिओ, सव्वं अवहरिअ नग्गो कओ।' सा कहेइ—"पुव्वं मए कहियं, हे सामि ! तए एव मज्झरत्तीए मंजूसं गहिऊण न आगंतव्वं, तुमए न मन्निअं तेण एवं जायं।" सो कहेइ—"अहं महाबलिट्ठो वि किं करोमि ? जइ पंच छ वा चोरा आगया होज्जा, तया ते सव्वे अहं जेउं समत्थो, एए उ सयसो थेणा आगया, तेणाहं तेहिं सह जुज्झमाणो पराजिओ, सव्वं लुंठिऊण नग्गो कओ, पिट्ठदेसे य असिणाहं पहरिओ। पासेसु पिट्ठदेसं, घाएण सह कीडगावि उप्पन्ना।"

तीए तस्स पिट्ठदेसं पासित्ता णायं—चिब्भडस्स रसं वीयाइं च इमाइं संति। भत्तुस्सं वि कहिअं—"सामि ! भयभंतेण तए एवं जाणियं, केण वि अहं पहरिओ एवं तओ सोणिअं निग्गयं, तत्थ य कीडगा वि समुप्पन्ना, तं न सच्चं। तुं चिब्भडेण पहरिओ सि, तस्स रसं वीयाइ च पिट्ठदेसे लग्गाइं" ति। तओ तस्स देहपक्खालणाय सा जलं गहिऊण आगया, नियपइस्स देहसुद्धिं करेऊण परिहाणवत्थप्पणे ताइं चेव वत्थाइं अप्पेइ। सो ताइं वत्थाइं पासिऊणं धिट्ठत्तणेण कहेइ—"हुं हुं, मए तयच्चिय तुमं नाया, मए चिंतिअं— मम भज्जा किं करेइ ? तेणाहं भयभंतो इव तत्थ थिओ, सव्वावहरणमुवेक्खिअं, अन्नहा मम पुरओ इत्थीए का सत्ती ?" सा कहेइ—"हे भत्तार ! तव बलं मए तया चेव नायं, गेहेसूरो तुमं असि, अओ अज्जयणाओ तुमए मज्झरत्तीए मंजूसं गहिऊण कयावि न आगंतव्वं" ति भज्जाए वयणं सो अंगीकरेइ।

●

# ९. गामिल्लओ सागडिओ

अत्थि कोइ कम्हिइ गामेल्लओ गहवइ परिवसइ। सो य अण्णया कयाइं सगडं धण्णभरियं काऊणं, सगडे य तित्तिरिं पंजरगयं बंधेत्ता पट्ठिओ नयरं। नयरगओ य गंधियपुत्तेहिं दीसइ। सो य तेहिं पुच्छिओ—'किं एयं ते पंजरए?' त्ति।

तेण लवियं—'तित्तिर' त्ति।

तओ तेहिं लवियं—'किं इमा सगडतित्तिरी विक्कायइ?' तेण लवियं—"आमं, विक्कायइ।' तेहिं भणिओ—'किं लब्भइ?' सागडिएण भणियं—'काहावणेणं' त्ति।

तओ तेहिं काहावणो दिण्णो, सगडं तित्तिरं च घेत्तुं पयत्ता। तओ तेणं सागडिएणं भण्णइ—'कीस एयं सगडं नेहि?' त्ति।

तेहिं भणियं—'मोल्लेणं लइयय' त्ति।

तओ ताणं ववहारो जाओ जितो सो सागडिओ, हिओ य सो सगडो तित्तिरीए समं।

सो सागडिओ हियसगडोवगरणो जोग-खेम-निमित्तं आणिएल्लियं बइल्लं घेत्तूणं विक्कोसमाणो गंतुं पयत्तो, अण्णेण य कुलपुत्तएणं दीसइ, पुच्छिओ य—'कीस विक्कोससि?'

तेण लवियं—'सामि! एवं च एवं च अइसंधिओ हं।'

तओ तेण साणुकंपेण भणिओ—'वच्च ताणं चेव गेहं एवं च एवं च भणाहि' त्ति।

तओ सो तं वयणं सोऊण गओ, गंतूण य तेण भणिआ—"सामि! तुब्भेहिं मम भंडभरिओ सगडो हिओ ता इमं पि बइल्लं गेण्हह। मम पुण सत्तुया-दुपालियं देह, जं घेत्तूण वच्चामि त्ति। न य अहं जस्स व कस्स व हत्थेणं गेण्हामि, जा तुज्झ घरिणी पाणेहि वि पिययरी सव्वालंकारभूसिया तीए दायव्वा, तओ मे परा तुट्ठी भविस्सइ। जीवलोगब्भंतरं व अप्पाणं मन्निस्सामि।"

ततो तेहिं सक्खी आहूया, भणियं च—'एवं होउ' त्ति। तओ ताणं पुत्तमाया सत्तुयादुपालियं घेत्तूण निग्गया, तेण सा हत्थे गहिया, घेत्तूण य तं पट्ठिओ।

तेहिं वि भणिओ—'किमेयं करेसि ?'

तेण भणियं—'सत्तुयादुपालियं नेमि।'

ततो ताणं सद्देण महाजणो संगहिओ, पुच्छिया—'किमेयं ?' ति। ततो तेहिं जहावत्तं सव्वं परिकहियं। समागयजणेण य मज्झत्थेणं होऊण ववहार-निच्छओ सुओ, पराजिया य ते गंधियपुत्ता। सो य किलेसेण तं महिलियं मोयाविओ, सगडो अत्थेण सुबहुएण सह परिदिण्णो।

●

## १०. पुत्तेहिं पराभविअस्स पिउस्स कहा

जाव दव्वं विइण्णं न पुत्ता ताव वसंवया।
पत्ते दव्वे य सच्छंदा हवंति दुक्खदायगा॥

कंमि नयरे एगवुड्ढस्स चत्तारि पुत्ता संति। सो थविरो सव्वे पुत्ते परिणाविऊण नियवित्तस्स चउब्भागं किच्चा पुत्ताणं अप्पियं। सो धम्माराहण-तप्परो निच्चिंतो कालं गमेइ। कालंतरे ते पुत्ता इत्थीणं वेमणस्सभावेण भिन्नघरा संजाआ। वुड्ढस्स पइदिणं पइघरं भोयणाय वारगो निबद्धो। पढमदिणंमि जेट्ठस्स पुत्तस्स गेहे भोयणाय गओ। बीयदिणे बीयपुत्तस्स घरे जाव चउत्थ-दिणे कणिट्ठस्स पुत्तस्स घरे गओ। एवं तस्स सुहेण कालो गच्छइ। कालंतरे थेराओ धणस्स अपत्तीए पुत्तवहूहिं सो थेरो अवमाणिज्जइ। पुत्तवहूओ कहिंति—"हे ससुर! अहिलं दिणं घरंमि किं चिट्ठसु? अम्हाणं मुहाइं पासिउं किं ठिओ सि? थीणं समीवे वसणं पुरिसाणं न जुत्तं, तव लज्जावि न आगच्छेज्जा, पुत्ताणं हट्टे गच्छेज्जसु।" एवं पुत्तवहूहिं अवमाणिओ सो पुत्ताण हट्टे गच्छइ।

तया पुत्तावि कहिंति—"हे वुड्ढ ! किमत्थं एत्थ आगओ? वुड्ढत्तणे घरे वसणमेव सेयं, तुम्ह दंता वि पडिआ, अक्खितेयं पि गयं, सरीरं वि कंपिरमत्थि, अत्थ ते किंपि पओयणं नत्थि, तम्हा घरे गच्छाहि।" एवं पुत्तेहिं तिरक्करिओ सो घरं गच्छेइ तत्थ पुत्तवहूओ वि तं तिरक्करंति। पुत्तपुत्ता वि तस्स थेरस्स कच्छुट्टियं निक्कासेइरे; कयावि मंसुं दाढियं च करिसिन्ति। एवं सव्वे विविहप्पगारेहिं तं वुड्ढं अवहसिंति। पुत्तवहूओ भोयणे वि रुक्खं अपक्कं च रोट्टगं दिंति। एवं पराभविज्जमाणो वुड्ढो चिंतेइ—'कि करेमि, कहं जीवणं निव्वहिस्सं?' एवं दुहमणुभवंतो सो नियमित्तसुवण्णगारस्स समीवे गओ। अप्पणो पराभवदुहं तस्स कहेइ, निरथरणुवायं च पुच्छइ।

सुवण्णगारो वोल्लेइ—"भो मित्त! पुत्ताणे वीसासं करिऊण सव्वं धणमप्पिअं, तेण दुहिओ जाओ तत्थ कि चोज्जं? सहत्थेण कम्मं कयं, तं अप्पणा भोत्तव्वं चिअ।" तह वि मित्तत्तेण सो एवं उवायं दंसेइ—"तुमए पुत्ताणं एवं कहिअव्वं—'मम मित्तसुवण्णगारस्स गेहे रुप्पयदीणारभूसणेहिं भरिया एगा मंजूसा मए मुक्का अत्थि, अज्ज जाव तुम्हाणं न कहिअं, अहुणा जराजिण्णो हं, तेण सद्धम्मकम्मणा सत्तक्खेत्ताईसुं लच्छीए विणिओगं काऊण परलोगपाहेयं गिण्हिस्सं।' एवं कहिऊण पुत्तेहिं एसा मंजूसा रत्तीए गेहे आणावियव्वा। मंजूसाए मज्झे तं रुप्पगसयं मोइस्सं तं तु मज्झरत्तीए पुणो पुणो तुमए सयं च सहस्सं च रणरणयारपुव्वं गणेयव्वं, जेण पुत्ता मन्निस्संति—'अज्जावि वहुधणं पिउणो समीवे अत्थि।' तओ धणासाए ते पुव्वमिव भत्ति करिस्संते। पुत्तवहूओ वि तहेव सक्कारं काहिंति। तुमए सव्वेसिं कहियव्वं—'इमीए मंजूसाए वहुधणमत्थि। पुत्तपुत्तवहूणं नामाइं लिहिऊण ठवियमत्थि। तं तु मम मरणंते तुम्हेहिं नियनियनामवारेण गहिअव्वं।' धम्मकरणत्थं पुत्तेहिंतो धणं गिण्हिऊण सद्धम्मकरणे वावरियव्वं। मम रुप्पगसयं पि तुमए न विस्सारियव्वं, एयं अवसरे दायव्वं।"

सो थेरो मित्तस्स वुद्धीए तुट्ठो गेहे गच्चा रत्तीए पुत्तेहिं मंजूसं आणाविऊण रत्तीए तं रुप्पगसयं सय-सहस्स-दससहस्साइगुणणेण तं च्चिय गणिंति।

पुत्ता वि विआरेंति—पिउस्स पासे वहुधणमत्थि, ते वहूणं पि कहिंति। सव्वे ते थेरं वहुं सक्कारिंति सम्माणिंति य अईवनिव्वंधेण तं पुत्तवहूआ वि अहमहमिगयाए भोयणाय निंति, साउं सरसं भोयणं दिंति, तस्स वत्थाइं पि सएव पक्खालिंति, परिहाणाय धुविआइं वत्थाइं अप्पिंति। एवं वुड्ढस्स सुहेण कालो गच्छइ।

एगया आसन्नमरणो सो पुत्ताणं कहेइ—"मज्झ धम्मकरणेच्छा वट्टइ, तेण सत्तखेत्तेसुं किंचि वि धणं दाउमिच्छामि।" पुत्ता वि मंजूसा-गयधणासाए अप्पिंति। सो वुड्ढो जिण्णमंदिरुवस्सयसुपत्ताईसुं जहसत्तीए देइ। अप्पणो परममित्तसुवण्णगारस्स वि नियहत्थेण रुप्पयसयं पच्चप्पेइ, एवं सद्धम्मकम्मंमि धणव्वयं किच्चा, मरणकालंमि पुत्ताणं पुत्तवहूणं च बोल्लाविऊण कहिअं—"इमीए मंजूसाए सव्वेसिं नामग्गहणपुव्वयं धणं मुत्तमत्थि। तं तु मम मरणकिच्चं काऊणं पच्छा जहनामं तुम्हेहिं गहिअव्वं" ति कहिऊण समाहिणा सो वुड्ढो कालं पत्तो। पुत्ता वि तस्स मच्चुकिच्चं किच्चा नाइजणं पि जेमाविऊण वहुधणासाइ जया सव्वे मिलिऊण मंजूसं उग्घाडिंति तया तम्मज्झंमि नियनियनामजुत्तपत्तेहिं वेढिए पाहाणखंडे तं च रुप्पगसयं पासित्ता अहो वुड्ढेण अम्हे वंचिआ वंचिअ त्ति, किल अम्हाणं पिउभत्तिपरंमुहाणं अविणयस्स फलं संपत्तं। एवं सव्वे ते दुहिणो जाआ।

उवएसो—

पुत्तेहिं पत्तवित्तेहिं पिअरस्स पराभवं।
सोच्चा तहा पयट्टेज्जा सुहं वुड्ढत्तणे वसे॥

●

## ११. भारियासीलपरिक्खा

अत्थि अवंती नाम जणवओ। तत्थ उज्जेणी नाम नयरी रिद्धित्थिमियसमिद्धा। तत्थ राया जितसत्तू नाम। तस्स रन्नो धारिणी नाम देवी। तत्थ य उज्जेणीए नयरीए दसदिसिपयासो इब्भो सागरचंदो नाम। भज्जा य से

चंदसिरी। तस्स पुत्तो चंदसिरीए अत्तओ समुद्ददत्तो नाम सुरूवो। सो य सागरचंदो परमभागवउदिक्खासंपत्तो भगवयगीयासु सुत्तओ अत्थओ य विदितᵒ परमत्थो। सो य तं समुद्ददत्तं दारगं गिहे परिव्वायगस्स कलागहणत्थे ठवइ "अण्णसालासु सिक्खंतो अण्णपासंडियदिट्ठी हवेज्जा।"

तओ सो समुद्ददत्तो दारगो तस्स परिव्वायगस्स समीवे कलागहण करेमाणो अण्णया 'कयाइ फलगं' ठवेमि त्ति गिहं अणुप्पविट्ठो। नवरि च पासइ नियगजणणीं तेण परिवायगेण सद्धिं असब्भं आयरमाणीं। ततो सो निग्गओ इत्थीसु वीरागसमावण्णो 'न एयाओ कुलं सीलं वा रक्खंति' त्ति चिंतिऊण हियएण निव्वंधं करेइ, जहा—'न मे वीवाहेयव्वं' ति। तओ से समत्तकलस्स जोव्वणत्थस्स पिया सरिसकुल-रूव-विहवाओ दारियाओ वरेइ। सो य ता पडिसेहेइ। एवं तस्स कालो वच्चइ।

अण्णया तस्स सम्मएणं पिया सुरट्ठदेसं आगओ ववहारेणं। गिरिनयरे धणसत्थवाहस्स धूयं धणसिरिं पडिरूवेण सुंकेणं समुद्ददत्तस्स वरेइ। तस्स य अन्नायं एव तिहिगहणं काऊण नियनगरं आगओ। तओ तेण भणिओ समुद्द-दत्तो—"पुत्त! मम गिरिनयरे भंडं अच्छइ, तत्थ तुमं सवयंसो वच्च। तओ तस्स भंडस्स विणिओगं काहामो" त्ति वोत्तूण वयंसाण य से दारियासंवंधं संविदितं कयं।

तओ ते सविभवाणुरूवेणं निग्गया, कहाविसेसेण य पत्ता गिरिनयरं वाहिरओ य ठाइऊणं धणस्स सत्थवाहस्स मणुस्सो पेसिओ, जहा—'ते आगओ वरो' त्ति। तओ तेण सविभवाणुरूवा आवासा कया, तत्थ य आवासिया। रत्तीए आगया भोयणववएसेणं धणसत्थवाहगिहे, धणसिरीए पाणिग्गहणं कारिओ। तओ सो धणसिरीए वासगिहं पविट्ठो। तओ णेणं पइरिक्कं जाणिऊण तीसे धणसिरीए चम्मट्ठिं दाऊण निग्गओ वयंसाण च मज्झे सुत्तो। ततो पभायाए रयणीए सरीरावस्सकहेउं सवयंसो चेव निग्गओ वहिया गिरि-नयरस्स। तेसिं वयंसाणं अदिट्ठओ चेव नट्ठो। तओ से वयंसेहिं आगंतूणं [सागरचंदस्स] धणसत्थवाहस्स य परिकहियं 'गओ सो'। तेहिं समंततो

मग्गिओ, न दिट्ठो। तओ ते दीणवयणा कइवयाणि दिवसाणि अच्छिऊण धणसत्थवाहं आपुच्छिऊण गया नियगनयरं।

इयरो वि समुद्दत्तो देसंतराणि हिंडिऊण केणइ कालेण आगओ गिरिनयरं कप्पडियवेसच्छण्णो परूढनह-केस-मंसु-रोमो। दिट्ठो णेण धणसत्थवाहो आरामगओ। तओ तेणं पणमिऊण भणिओ—"अहं तुब्भं आरामकम्मकरो होमि।" तेण य भणिओ—"भणसु, का ते भत्ती दिज्जउ" त्ति? तओ तेण भणियं—"न मे भईए कज्जं। अहं तुज्झ पसादाभिकंखी। मम तुट्ठीदाणं देज्जह" त्ति। एवं पडिस्सुए आरामे कम्मं आरद्धो काउं।

तओ सो रुक्खाउव्वेयकुसलो तं आरामं कइवएहिं दिवसेहिं सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धं करेइ। तओ सो धणसत्थवाहो तं आरामसिरिं पासिऊणं परं हरिसमुवगओ। चिंतियं च णेणं—"किमेएणं गुणाइसयभूएण पुरिसेण आरामे अच्छंतेण? वरं मे आवारीए अच्छउ" त्ति। तओ ण्हवियपसाहिओ दिण्णवत्थजुयलो ठवियो आवणे।

तओ तेण आय-वयकुसले गंधजुत्तिनिउणत्तणेण पुरजणो उम्मत्तिं गाहिओ। तओ पुच्छिओ जणेणं—'किं ते नामधेयं?' पभणइ य—'विणीयओ त्ति मे नामधेयं।' एवं सो विणीयओ विणयसंपन्नो सव्वनयरस्स वीससणिज्जो जाओ। तओ तेण सत्थवाहेण चिंतियं—"न खेमं मे एस आवणे य अच्छंतो। मा एस रायसंविदितो हवेज्ज, ततो राएण हीरइ त्ति। वरमेस गिहे भंडारसालाए अच्छंतो।" तओ तेण सगिहं नेऊण परियणं च सद्दावेऊण भणियं—"एस वो विणीयओ जं देइ तं भे पडिच्छियव्वं, न य से आणा कोवेयव्व" त्ति। तओ सो विणीयओ घरे अच्छइ, विसेसओ य धणसिरीए जं चेडीकम्मं तं सयमेव करेइ। तओ धणसिरीए विणीयओ सव्ववीसंभट्टाणिओ जाओ।

तत्थ य नगरे रायसेवी एक्को डिंडी परिवसइ। इओ य सा धणसिरी पुव्वावरण्हसमए सत्ततले पासाए अट्टालगवरगया सह विणीयगेणं तंबोलं समाणयंती अच्छइ। सो य डिंडी ण्हाय-समालद्धो तस्स भवणस्स आसण्णेणं गच्छइ। धणसिरीए तंबोलं निच्छूढं पडियं डिंडिस्सुवरिं। डिंडिणा निज्झाइया य,

दिट्ठा य णेणं देवयभूया। तओ सो अणंगवाणसोसियसरीरो तीए समागमुस्सुओ संवुत्तो। चिंतियं च णेणं—"एस विणीयओ एएसिं सव्वप्पवेसी, एयं उवतप्पामि। एयस्स पसाए एईए सह समागमो भविस्सइ" त्ति।

तओ अण्णया तेण विणीयओ नियगभवणं नीओ। पूया-सक्कारं च काउं पायपडिएण विण्णविओ—'तहा चेट्ठसु, जेण मे धणसिरीए सह संजोगं करेसि' त्ति। तओ सो 'एवं होउ' त्ति वोत्तूण धणसिरीए सगासं गओ। पत्थावं च जाणिऊण भणिया णेणं धणसिरी डिंडिवयणं। तओ तीए रोसवसगयाए भणिओ—"केवल तुमे चेव एयं संलत्तं, अण्णो ममं ण जीवंतो" त्ति। तओ सो विइयदिवसे निग्गओ, दिट्ठो य डिंडिणा। भणिओ णेणं—"किं भो वयंस! कयं कज्जं?" त्ति। तओ तेण तव्वयणं गूहमाणेणं भणियं—'घत्तीहं' ति। तओ पुणरवि तेण दाणमाणेणं संगहियं करेत्ता विसज्जिओ।

तओ सो आगंतूण धणसिरीए पुरओ विमणा तुण्हिक्को ठिओ अच्छइ। तओ तीए धणसिरीए तस्स मणोगयं जाणिऊण भणिओ—"किं ते पुणो डिंडी किंचि भणइ?" तेण भणियं—'आमं' ति। तीए निवारिओ—"न ते पुणा तस्स दरिसणं दायव्वं।" पुणो य पुच्छिज्जमाणो तहेव तुण्हिक्को अच्छइ। तओ तीए तस्स चित्तरक्खं करेंतीए भणिओ—"वच्च, देहि से संदेसं जहा—'असोगवणियाए तुमे अज्ज पओसे आगंतव्वं" ति।

तेण तहा कयं। तओ सा असोगवणियाए सेज्जं पत्थरेऊण जोगमज्जं च गिण्हिऊण विणीयगसहिया अच्छइ। सो आगओ। तओ तीए सोवयारं मज्जं से दिण्णं। सो य तं पाऊण अचेयणसरीरो जाओ। ताए तस्सेव य संतियं असिं कड्ढिऊण सीसं छिण्णं। पच्छा विणीयओ भणिओ—'तुमे अणत्थं कारिया तुज्झ वि सीसं छिदामि' त्ति। तेण पायवडिएण मरिसाविया। विणीयगेण धणसिरिसंदिट्ठेणं कूवं खणित्ता निहिओ।

तओ अन्नया सुहासणवरगया धणसिरी विणीयगेण पुच्छिया—"सुंदरि! तुमं कस्स दिन्ना?" तीए भणियं—"उज्जेणिगस्स समुद्ददत्तस्स दिण्णा।" तेण भणियं—'वच्चामि, अहं तं गवेसित्ता आणेमि' त्ति भणिउं निग्गओ। संपत्तो य

पाए य भूमीए उवरि जओ तओ घंसेइ, परंतु गाढयरवंधत्तणेण जया सो न छुट्टिओ, तया तं निइयवाई विउसो कहेइ—कि मुहा उज्जमेण कएण, एसो निविडो वंधो कया वि न छुट्टिहिइ ? निप्फलेण वलहाणिकारणायासेण कि ? खुहापिवासापीलिआणं पि अम्हाणं नियईए सरणं चिअ वरं।"

एवं सोच्चा उज्जमवाइपंडिओ छुट्टणपयासं न चएइ। छुट्टणाय अईव पयासं कुणेइ। एवं तेसिं दुवे दिणा अइक्कंता। भोयणाभावेण सरीरं पि ताणमईव खीणं संजायं, कज्जकरणे वि असमत्थं जायं, तह वि उज्जमवाई पयासहीणावव रगे इओ तओ भममाणो वंधणाओ मोअणाय जत्तं न मुंचेइ। नियइवाई तं वएइ—'अहुणा परमेसरस्स नामं गिण्हसु, किमायासकरणेण फलरहिएण ?' तया सो उज्जमवाई कहेइ—'समावन्ने वि मरणे उज्जमो कया वि न मोत्तव्वो, सया वि उज्जमसीलेण जणेण होयव्वं।' नियइवाई वोल्लेइ—'जइ एवं ता अंधारिए एयंमि अववरगे पाए हत्थे य घंसमाणा भमंता चिट्ठेइ, किं उज्जमो फलं दाही ?'

तह वि सो उज्जमवाई पंडिओ खीणसरीरवलो तइअदिणंमि भित्ति-दिसाए भमंतो हत्थे पाए य घंसमाणो पडंतो पुणरवि घसंतो भमंतो दइववसाओ अववरगस्स कोणगे तत्थ पडिओ जत्थ उंदुरस्स विलं वट्टइ। तस्स हत्था विलोवरिं समागया। तत्थ रंधमज्झट्ठिओ मूसओ वाहिरं निग्गंतुमचयंतो दंतेहिं तस्स हत्थवंधणं छिंदेइ, तया सो छुट्टिओ समाणो नेत्तपडं पायवंधणं च अवसारेइ, सो तया अववरगे गाढयरतमेण किमवि न पासेइ। अस्स अववरगस्स दारं कत्थ अत्थि त्ति भित्तिफासणेण निरिक्खंतेण तेण कमेण दारं लद्धं। वाहिरओ पिणद्धं तं पासिऊण कट्ठेण तं दारं मूलाओ उत्तारिय वाहिरं सो निग्गओ। पच्छा देव्ववाइं पंडिअं पि वंधणाओ ओमोएइ।

पच्छण्णट्ठाणे ठिओ कालियासो सव्वं निरूवेइ। जया ते दुवे वाहिरनिग्गए पासेइ, पासित्ता ते घेत्तूण नियघरंमि गओ। सम्मं अन्नपाणेहिं सक्कारित्ता सम्माणित्ता य निवसहाए ते विउसे गहिऊण समागओ। भोयनरिंदं

कहेइ—'उज्जमेण जिअं, भग्गेण पराइअं' ति; जओ उज्जमवाई पंडिओ उज्जमेण छुट्टिओ, अवरो उज्जमाभावाओ न छुट्टिओ। जो दइव्वमेव पहाणं मन्नेइ सो पमाई कहिज्जइ।' जत्थ पमाओ आलस्सं तत्थ खुहा-पिवासा-दुक्खं-मरणं च अवस्सं संभवेइ। जो उज्जमं कुणइ, सो कयाइ दुक्खाओ मुच्चइ, किं पि य फलं पावेइ। दइव्ववाई उज्जमेण विणा फलं न लहेज्जा। तओ उज्जमो पहाणो णायव्वो। तओ भोयनरिंदो उज्जमवाइपंडिअं दव्व-वत्थाहूसणेहिं सम्माणेइ। नीइसत्थे वि—'उज्जमे णत्थि दालिद्दं।' अओ उज्जमो कयावि न मोत्तव्वो।

उवएसो—

उज्जमस्स फलं नच्चा विउसदुगनायगे।
जावज्जीवं न छड्डेज्जा उज्जमं फलदायगं॥

●

## १४ कुमारमंत्तिस्स दंडविहि

जारिसो माणवो होइ सिक्खणं तत्थ तारिसं।
समावराहचोरेसुं कुमारस्सेह नायगं॥

पाडलिउत्तनयरे जियसत्तुनरिंदस्स कुमारो नाम चउवुद्धिनिहाणो पहाणो मंती आसि। सो जारिसा अवराहिणो आगच्छंति ताणं परिक्खिअ, तारिसं दंडं देइ। एगया कोट्टवालेण चउरो चोरा कुमारमंतिणो पुरओ ठविआ। कुमारमंती तेसिं वुद्धीए परिक्खं करिऊण दंड दाहीअ, जहा पढमचोरस्स उत्तं—"तुं भद्दओ वि होऊण, एरिसं अकज्जं काउं तुमं किं जुत्तं? किं तव एयं सोहेइ? गच्छसु तुं, मा कयावि एवं कुणेज्जा" इअ वोत्तूण सो विसज्जिओ।

वीअं चोरं आहूय मंतिणा सावमाणं परुसक्खर-पुरस्सरं वुत्तं—"हे मुरुक्ख-सेहर. सुकुलुप्पन्नेणावि तुमए एरिसं कज्जं कयं, किं ते लज्जा वि नागया? गच्छसु, मुहं मसीए लिंपसु, मा मुहं पुणो दंसेसु" त्ति सो वि विसज्जिओ।

नियगभवणं पविट्ठो, दिट्ठो य अम्मापिऊहिं, तेहिं य कयंसुपाएहिं उवगूहिओ। तओ तेहिं धणसत्थवाहस्स लेहो पेसिओ 'आगओ से जामाउओ' त्ति। तओ सो वयंसपरिगहियो मायापिईहिं य सद्धिं ससुरकुलं गओ। तत्थ य पुणरवि वीवाहो कओ।

तओ सो अप्पाणं गूहेंतो धणसिरीए विणीयगवेसेणं अप्पाणं दरिसेइ। परं तु तीए तस्स रूवदंसणणिमित्तं पच्छण्णदीवं ठवेऊण तस्स रूवोवलद्धी कया। दिट्ठो य णाए विणीयओ। तओ तेण सव्वं संवादितं।

●

## १२. छक्खंडागम-लेहण-कहा

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-वुद्धि-संपण्णेण वम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगयवड्ढमाण-पादमूलेण इंद-भूदिणावहारिदो। उत्तं च—

गोत्तेण गोदमो विप्पो चाउव्वेय-सडंगवि।
णामेण इंदभूदि त्ति सीलवं वम्हणुत्तमो॥

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण वारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथरयणा जादेत्ति। तेण वि गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं। तेण वि जंवूसामिस्स संचारिदं। परिवाडि-मस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया। अपरिवाडिए पुण सयल-सुद-पारगा संखेज्ज-सहस्सा। गोदमथेरो लोहज्जाइरियो जंवूसामी य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धि-संपण्णा सयल-सुय-सायर-पारया होऊण केवलणाण-मुप्पाइय णिव्वुइं पत्ता। तदो विण्हू णंदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दवाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच वि चोद्दस-पुव्वहरा। तदो विसाहाइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थथेरो धिदिसेणो विजया-

इरियो वुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे पुरिसोलीकमेण एक्कारस वि आइरिया एक्कारसण्हमंगाणं उप्पायपुव्वादि-दसण्हं पुव्वाणं च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्हं पुव्वाणमेगदेसधरा य। तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पांडुसामी धुवसेणो कंसाइरियो त्ति एदे पुरिसोलीकमेण पंच वि आइरिया एक्कारसंगधारया जादा, चोद्दसण्हं पुव्वाणमेगदेसधरा य। तदो सुभद्दो जसभद्दो जसवाहू लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारंग-धरा सेसंग-पुव्वाणमेगदेसधरा य। तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।

तेण वि सोरट्ठ-विसय-गिरि-णयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण अट्ठंगमहा-णिमित्तपारएण गंथ-वोच्छेदो होहिदि त्ति जादभएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो। लेहट्ठिय-धरसेणा-इरिय-वयणमवधारिय तेहिं वि आइरिएहिं वे साहू गहण-धारण-समत्था धवला-मल-वहुविह-विणय-विहूसियंगा सील-माला-हरा गुरु पेसणासण-तित्ता देस-कुल-जाइसुद्धा सयल-कला-पारया तिक्खुत्तावुच्छियाइरिया अंधविसय-वेण्णायडादो पेसिदा। तेसु आगच्छमाणेसु रयणीए पच्छिमभाए कुंदेंदु-संखवण्णा सव्व-लक्खण-संपुण्णा अप्पणो कय-तिप्पदाहिणा पाएसु णिसुढिय-पदियंगा वे वसहा सुमिणंतरेणं धरसेणभडारएण दिट्ठा। एवंविहसुमिणं दट्ठूण तुट्ठेण धरसेणाइरिएण 'जयउ सुय-देवदा' त्ति संलवियं। तद्दिवसे चेय ते दो वि जणा संपत्ता धरसेणाइरियं। तदो धरसेण-भयवदो किदियम्मं काऊण दोण्णि दिवसे वोलाविय तदियदिवसे विणएण धरसेणभडारओ तेहिं विण्णत्तो—'अणेण कज्जेणम्हा दो वि जणा तुम्हं पादमूलमुवगया' त्ति। 'सुट्ठु भद्दं' त्ति भणिऊण धरसेण-भडारएण दो वि आसासिदा। तदो चिंतिदं भयवदा—

सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि-जाहय-सुएहिं।
मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा॥
दढ-गारव-पडिवद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो।
सो भट्ट-वोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो॥

इदि वयणादो जहाछंदाईणं विज्जा-दाणं संसार-भय-वद्धणमिदि चिंतेऊण सुहसुमिणदंसणेणेव अवगय-पुरिसंतरेण धरसेणभयवदा पुणरवि ताणं परिक्खा काउमाढत्ता 'सुपरिक्खा हियय-णिव्वुइकरेति'। तदो ताणं तेण दो विज्जाओ दिण्णाओ। तत्थ एया अहियक्खरा, अवरा विहीणक्खरा। एदाओ छट्ठोव-वासेण सहेहु त्ति। तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्‌तुरिया अवरेया काणिया। एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहि हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण पढंतेहिं दो वि देवदाओ सहाव-रूवट्ठियाओ दिट्ठाओ। पुणो तेहिं धरसेणभयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेणभडारएण सोम्मतिहि-णक्खत्त-चारे गंथो पारद्धो। पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ-मास-सुक्क-पक्ख-एक्कारसीए पुव्वण्हे गंथो समाणिदो। विणएण गंथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी पूजा पुप्फ-वलि-संख-तूर-रव-संकुला कदा। तं दट्ठूण तस्स 'भूदवलि' त्ति भडारएण णामं कयं। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दतस्य 'पुप्फयंतो' णामं कयं।

पुणो ते तद्दिवसे चेव पेसिदा संता 'गुरु-वयणमलंघणिज्जं' इदि चिंतिऊणागदेहि अंकुलेसरे वरिसा-कालो कओ। जोगं समाणीय जिणवालियं दट्ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि-विसयं गदो। भूदवलिभडारओ वि दमिल-विसयं गदो। तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण विसदि-सुत्ताणि करिय पढाविय पुणो सो भूदवलिभयवंतस्स पासं पेसिदो। भूदवलिभयवदा जिणवालिद-पासे दिट्ठ-विसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-वुद्धिणा पुणो दव्व-पमाणाणुगममादिं काऊण गंथ-रयणा कदा। तयो एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च भूदवलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति।

# १३. उज्जममेव फलदाणे पमाणेइ

एगया भोयनरिंदस्स सहाए दुण्णि विउसा समागया, तेसु एगो नियइवाई—जं भावी तं नन्नहा होइ', अओ सो उज्जमं विणा भाविं चिय मन्नेइ। न्नो पंडिओ 'उज्जममेव फलदाणे पमा इ', जओ अलसा कं पि फलं न हंति, जओ वुत्तं—

"उज्जमेण हि सिज्झंति कज्जाइं न पमाइणो।
न हि सुत्तस्स सिंहस्स पविसंति मिगा मुहे॥"

एवं बीओ उज्जमेण फलवाई अत्थि। भोयनरिंदेण ते दोवि आगमण-पयोयणं पुट्ठा। ते कहिंति—'विवायनिण्णयत्थं तुम्हाणमंतिए अम्हे आगया।' रण्णा वुत्तं—'तुम्हाणं जो विवाओ अत्थि तं कहेह।' तया ते दुण्णि वि नियं नियं मयं जुत्तिपुरस्सरं निवइणो पुरओ ठवेइ। राया विआरेइ—'एत्थ किं परमत्थओ सच्चं? तं च कहं जाणिज्जइ।' तया निण्णेउमसमत्थो कालियासं पंडिअं पुच्छइ—'एएसिं नाओ कहं किज्जइ? किं वा उत्तरं दिज्जइ?' कालियासो कहेइ—"हे नरिंद! जह दक्खाए रसो चक्खिज्जमाणो महुरो खट्टो वा नज्जइ, तह य एयाण विवाओ कसिज्जइ, तेण सच्चो असच्चो वा जाणिज्जइ।" राया कहेइ—"कसण-कियाए अत्थि को वि उवाओ? जइ सिया, तया कसिज्जउ।"

कालियासो तया ते दुण्णि विउसे बोल्लाविऊण तेसिं नेत्ताइं पडेण बंधित्ता, दुवे य हत्थे पिट्ठस्स पच्छा बंधिअ, पाए गाढयरं निअंतिअ अंधयारमए अववरगे ते दुण्णि विउसा ठविआ कहियं च—"जो दइव्ववाई, सो दइव्वेण छुट्टउ, जो उज्जमवाई, सो उज्जमेण छुट्टेज्जा।" एवं कहिऊण कालियासो पच्छा नियत्तो।

तओ सो नियइवाई 'जं भावि तं होहिइ' त्ति मन्नमाणो निच्चितो समाणो सुहेण तत्थ सुत्तो। उज्जमवाई जो, सो छुट्टणाय बहुं उज्जमं कुणेई, हत्थे

पाए य भूमीए उवरि जओ तओ घंसेइ, परंतु गाढयरवंधत्तणेण जया सो न छुट्टिओ, तया तं निइयवाई विउसो कहेइ—किं मुहा उज्जमेण कएण, एसो निविडो वंधो कया वि न छुट्टिहिइ ? निप्फलेण वलहाणिकारणायासेण किं ? खुहापिवासापीलिआणं पि अम्हाणं नियईए सरणं चिअ वरं।"

एवं सोच्चा उज्जमवाइपंडिओ छुट्टणपयासं न चएइ। छुट्टणाय अईव पयासं कुणेइ। एवं तेसिं दुवे दिणा अइक्कंता। भोयणाभावेण सरीरं पि ताणमईव खीणं संजायं, कज्जकरणे वि असमत्थं जायं, तह वि उज्जमवाई पयासहीणावथरगे इओ तओ भममाणो वंधणाओ मोअणाय जत्तं न मुंचेइ। नियइवाई तं वएइ—'अहुणा परमेसरस्स नामं गिण्हसु, किमायासकरणेण फलरहिएण ?' तया सो उज्जमवाई कहेइ—'समावन्ने वि मरणे उज्जमो कया वि न मोत्तव्वो, सया वि उज्जमसीलेण जणेण होयव्वं।' नियइवाई बोल्लेइ—'जइ एवं ता अंधारिए एयंमि अववरगे पाए हत्थे य घंसमाणा भमंता चिट्ठइ, किं उज्जमो फलं दाही ?'

तह वि सो उज्जमवाई पंडिओ खीणसरीरवलो तइअदिणंमि भित्ति-दिसाए भमंतो हत्थे पाए य घंसमाणो पडंतो पुणरवि घसंतो भमंतो दढववसाओ अववरगस्स कोणगे तत्थ पडिओ जत्थ उंदुरस्स विलं वट्टइ। तस्स हत्था विलोवरिं समागया। तत्थ रंधमज्झट्ठिओ मूसओ वाहिरं निग्गंतुमचयंतो दंतेहिं तस्स हत्थवंधणं छिंदेइ, तया सो छुट्टिओ समाणो नेत्तपडं पायवंधणं च अवसारेइ, सो तया अववरगे गाढयरतमेण किमवि न पासेइ। अस्स अववरगस्स दारं कत्थ अत्थि त्ति भित्तिफासणेण निरिक्खंतेण तेण कमेण दारं लद्धं। वाहिरओ पिणद्धं तं पासिऊण कट्ठेण तं दारं मूलाओ उत्तारिय वाहिरं सो निग्गओ। पच्छा देव्ववाइं पंडिअं पि वंधणाओ ओमोएइ।

पच्छण्णट्ठाणे ठिओ कालियासो सव्वं निरूवेइ। जया ते दुवे वाहिरनिग्गए पासेइ, पासित्ता ते घेत्तूण नियघरंमि गओ। सम्मं अन्नपाणेहिं सक्कारित्ता सम्माणित्ता य निवसहाए ते विउसे गहिऊण समागओ। भोयनरिंदं

कहेइ—'उज्जमेण जिअं, भग्गेण पराइअं' ति; जओ उज्जमवाई पंडिओ उज्जमेण छुट्टिओ, अवरो उज्जमाभावाओ न छुट्टिओ। जो दइव्वमेव पहाणं मन्नेइ सो पमाई कहिज्जइ।' जत्थ पमाओ आलस्सं तत्थ खुहा-पिवासा-दुक्खं-मरणं च अवस्सं संभवेइ। जो उज्जमं कुणइ, सो कयाइ दुक्खाओ मुच्चइ, किं पि य फलं पावेइ। दइव्ववाई उज्जमेण विणा फलं न लहेज्जा। तओ उज्जमो पहाणो णायव्वो। तओ भोयनरिंदो उज्जमवाइपंडिअं दव्व-वत्थाहूसणेहिं सम्माणेइ। नीइसत्थे वि—'उज्जमे णत्थि दालिद्दं।' अओ उज्जमो कयावि न मोत्तव्वो।

उवएसो—

उज्जमस्स फलं नच्चा विउसदुगनायगे।
जावज्जीवं न छुड्डेज्जा उज्जमं फलदायगं॥

●

## १४ कुमारमंत्तिस्स दंडविहि

जारिसो माणवो होइ सिक्खणं तत्थ तारिसं।
समावराहचोरेसुं कुमारस्सेह नायग॥

पाडलिउत्तनयरे जियसत्तुनरिंदस्स कुमारो नाम चउवुद्धिनिहाणो पहाणो मंती आसि। सो जारिसा अवराहिणो आगच्छंति ताणं परिक्खिअ, तारिसं दंडं देइ। एगया कोट्टवालेण चउरो चोरा कुमारमंतिणो पुरओ ठविआ। कुमारमंती तेसिं वुद्धीए परिक्खं करिऊण दड दाहीअ, जहा पढमचोरस्स उत्तं—"तुं भद्दओ वि होऊण, एरिसं अकज्जं काउं तुमं कि जुत्तं? किं तव एयं सोहेइ? गच्छसु तुं, मा कयावि एवं कुणेज्जा" इअ वोत्तूण सो विसज्जिओ।

वीअं चोरं आहूय मंतिणा सावमाणं परुसक्खर-पुरस्सरं वुत्तं—"हे मुरुक्ख-सेहर. सुकुलुप्पन्नेणावि तुमए एरिसं कज्जं कयं, किं ते लज्जा वि नागया? गच्छसु, मुहं मसीए लिंपसु, मा मुहं पुणो दंसेसु" त्ति सो वि विसज्जिओ।

तइअं चोरं वोल्लाविऊण, लत्ताए पहरिअ, 'तुम्हाओ पाहाणो वि सोहणो' इअ सतिरक्कारं अद्धचंदेण निक्कासिओ। चउत्थं तु पच्छामुहं किच्चा गद्दभारोहिऊण सव्वनयरंमि भमाडिउमाइट्ठो। अवराहस्स एगत्ते भिन्नभिन्न-दंडो एएसिं कहं दिन्नो कुमारमंतिण त्ति अच्छरिअसंजुआ सव्वे सहाजणा जाया। तेसिं हिययगयभावं नाऊण 'चउण्हं चोराणं किं जायं' ति निरूवणत्थं रण्णा चरपुरिसो पेसिओ।

एगपहरंमि गए सो चरपुरिसो समागओ समाणो नरिंदं कहेइ—'महाराया! पढमो कोमलेण वयणेण उवालंभिओ संतो गेहे गंतूण, अप्पं पि उवलंभं असहंतो जीहं दंतेहिं पिसिऊण मच्चुं पत्तो। बीओ परुसक्खरेहिं तिरक्करिओ सो 'अहं कयावि मुहं न दंसिस्सं' ति कहिऊण विएसं गओ।

तइओ जो सहामज्झे ताडिओ, सो गिहाओ वाहिरं गंतुं न इच्छेज्जा। चउत्थो उ जो गद्दहमारोहिऊण नयरभमणमाइट्ठो सो उ गद्दहोवरिं परंमुह-मुववेसिअ नयरं भमाडिज्जमाणो, विविहावमाणवयणेहिं च पउरेहिं हिलिज्जमाणो निल्लज्जो नियघरसमीवं समागओ संतो तक्कोउहल्लदंसणत्थागयनिअभज्जं कहेइ—'अहुणाहं अवसिट्ठदुण्णिरच्छाओ भमिउं सिग्घं आगमिस्सं, तओ तुमं जलं सिग्घं उण्हं कुणेसु'—इअ चरपुरिसकहिअवुत्तंतं सुणिऊण सव्वे कुमार-मंतिस्स वुद्धिं पसंसन्ति।

●

## १५. चोरिक्कविसए दुण्हं विउसाणं कहा

कुडुंवपरिपोसत्थं चोरकम्मोज्जया वुहा।
परदुक्खं पि छिदंति वुहजुम्मं नियंसणं॥

भोयनरिंदस्स अवंतिनयरीए देवसम्मो विण्हुसम्मो य नाम माहणा दुण्णि भायरा विउसवरा छद्दंसणणिउणो वेयवेयंगपारंगया संति। लच्छी-सरस्सईणं एगत्थठाणाभावाओ ते विउसा अईव निद्धणा संति। ताणं भज्जाओ वि पइ-भत्तिपरा सुसीलाओ आसि।

एगया भोयणाभावेण दुहिया ते भज्जाओ निय-नियप्पियं कहेइरे—"चउसट्ठिकलासु तुम्हे चोरियकलं जाणेह न वा, अओ चोरिक्कं काऊणं पि-कओ धणं आणएह।"

एवं सोच्चा ते धणपत्तीए अन्नुवायं अलहमाणा किंपि चिंतिऊण भोयनरिंदमंदिरे रत्तीए चोरियं काउं गया। रायपासाए पच्छण्णं पवेसिआ।

तत्थ सुवण्ण-रयय-मणि-माणिक्क-पवालरासिं पासित्ता 'एयाणं हरणमईव पावं' ति सत्थे कहियं, एवं वियारं किच्चा धन्नागारेसु गच्चा सालीणं दुपोट्टलिगं वंधिऊण मत्थाएसु ठविऊण जया निग्गया, तया भोयनरिंदो महारिहसयणेसु सुत्तो अत्थि। पल्लंगसमीवंमि एगो मक्कडो हत्थे असिं घेत्तूण सावहाणो नरिंदं रक्खइ। ताहे पल्लंगुवरिं एगो सप्पो मंदं मंदं संचरमाणो निग्गओ। तस्स छाया नरिंदोवरिं पडिया, तं दट्ठूण पवंगमो सप्पवुद्धीए नरिंदं जया पहरिउं लग्गो, तया ते विउसा तारिसं असंजमसं दट्ठूण सिग्घयरं मक्कडं निग्गहिउं लग्गा। मक्कडो वि असिं घेत्तूण तेहिं सह जोद्धुं पउत्तो।

एवं हलवोले जाए जग्गिओ नरिंदो माहणं पुच्छइ—'के तुम्हे? कत्तो आगमणं?' ते सच्चं कहिंति—"अम्हे चोरिक्कत्थं एत्थ समागया, तुण्णं गच्छंतो अम्हे एणं कविं सप्पभमेण असिणा तुमम्मि पहरमाणं पासिऊण रक्खणत्थं अणेण सह जुद्धं किच्चा तुम्हे रक्खिओ।"

निवेण पुच्छियं—'किं अवहरियं?' तेहिं वुत्तं—सालीणं पोट्टलगा भरिया, जओ—'सुवण्णाइदव्वहरणे महापावं' अत्थि, तओ भोयणत्थं सालिधण्णं चिय अवहरियं।

तओ नरिंदो चिंतेइ—"मुरुक्खो मक्कडो अत्थि, अणेण अप्पणो रक्खा किल अप्पवहाइ होइ। जइ चोरिक्कत्थं एए पंडिआ मम मंदिरे न आगच्छंता, तया हं एएण कविणा अवस्सं हओ होंतो। अओ एए विउसा सक्काराऽरिहा चेव।" तओ विउसे कहेइ—'तुम्हाणं जं इट्ठं, तं मग्गेह।' एवं कहित्ता वहुधणं ताणं

दाविऊण विसज्जिआ। पच्छा नरिंदेण मक्कडाओ अप्परक्खणं चत्तं ति। एवं विउसा चोरिक्कं कुणंता वि परवाहं चयंति।

उवएसो—सोच्चा विउससिट्ठाणं चरियं जणवोहगं।
सया हिए पयट्टेज्जा संतोसं माणसे धरे॥



## १६. वसुदेवस्स गिहच्चाओ

अहमवि जोव्वणस्स उदये नवनवेहिं तुरग-झय-णेवत्थेहिं विसामि निज्जामि उज्जाणसिरिमणुभविऊण नागरजणेण विम्हयवियसियणयणेण पसंसिज्जमाणो रूवमोहियजुवइयण-दिट्ठिपहकराणुवज्झमाणो।

अण्णता य मं जेट्ठो गुरु सद्दावेऊणं भणइ—मा कुमार! दिवसं भमाहि वाहिरओ, धूसरमुहच्छायो दीससि, अच्छसु गिहे। मा ते कलाओ अहुणा गहियाओ सिढिलियाओ होहिंति। ततो मया 'एवं करिस्सं' ति पडिस्सुयं।

कयाइं च रण्णो धाईए य भगिणी खुज्जा गंधाहिगारणिउत्ता वण्णगं पीसंती मया पुच्छिया—'कस्स इमं विलेवणं सज्जिज्जइ?' त्ति। सा भणइ—'रण्णो।' मया भणियं—'अम्हं किं न होइ?' त्ति। सा भणइ—'कयावराहस्स राया तुब्भं ण देइ विसिट्ठं पि वत्थमाभरणं विलेवणं व' त्ति। गहिओ से बला वण्णओ वारंतीए। सा रुट्ठा भणइ—'एएहिं चेव आयारेहिं रुद्धो, तहावि न विरमसि अविणयाओ।' मया पुच्छिया—'साह, केण अवराहेण रुद्धो मि?' सा न साहइ 'रण्णो वीहेमि' त्ति। अंगुलियगदाणेण अब्भत्थियाणुगमिया साहइ—"राया विरहे णेगमेहिं विण्णविओ—देव! सुणह, कुमारो सारयचंदो विव जणणयण-सुहओ सुद्धचारित्तो जाए जाए दिसाए निज्जाइ ततो ततो तरुणिवग्गो तेण समं तक्कम्मो भमति। जा य तरुणीओ ताओ वायायण-गवक्ख-जालंतर-दुवारदेसेसु 'नियत्तमाणं पस्सिस्सामो' त्ति पोत्थकम्मजक्खीओ विव दिवसं गमेंति, सिमिणायंतीओ वि भणंति—'एस वसुदेवो, इमो वि वसुदेवो' त्ति। जातो पत्त-साग-फलानि गेण्हंति ताओ भणंति 'कइ वसुदेवो देसि?' त्ति। दारगरूवाणि

कंदमाणाणि वि कुमारदिण्णदिट्ठीओ विवज्जत्थं गेण्हंति—'वुट्टे वच्छो' त्ति दामेहिं बंधंति। एवं देव! उम्मत्तओ जणो जातो घरकज्जमुक्कवावारो देवातिहिपूयासु मंदायरो, तं कुणह पसायं, मा अभिक्खं णीउ उज्जाणाणि त्ति। रण्णा भणिया—'वच्चह वीसत्था, णिवारेमि णं ति।' भणियो य जो तत्थासि परियणो, जहा—'कोइ कुमारस्स न कहेइ एयं परमत्थं। तं निहुओ होहि' त्ति, ततो रण्णो उवालंभो न भविस्सइ। मया भणिया—'एवं करिस्सं' त्ति।"

चिंतियं च मे पुणो—'अहं जइ पसाएण णिग्गंतो होंतो तो मि बंधं पावेंतो, अहवा एस बंधो चेव, तण्ण मे सेयं इहमच्छिउं' ति संपहारेऊण सरवण्णभेयगुलियाओ काऊण वल्लहेण दारगेण सह निग्गतो संझाकाले नयरबाहिं। सुसाणासण्णं च अणाहमयगं दट्ठूण भणिओ मया वल्लहओ—'गेण्हसु दारुगाणि, सरीरपरिच्चायं करिस्सं।' तेण आणावियाणि कट्ठाणि, रइया चिया, भणिओ य वल्लहओ—'वच्च सिग्घं, रयणकरंडगं मम सयणिज्जाओ आणेहिं, दाणं दाऊण अग्गिं पविसिस्सं।' सो भणइ—'जइ एस निच्छओ भे तो देव! अहं पि अणुपविसिस्सं।' मया भणिओ—'जं ते रोयइ तं करिस्ससि, मा य रहस्सं भिंदसु, सिग्घं च एहि' त्ति। सो गतो 'जहा आणवेह' त्ति वोत्तूण।

मया वि अणाहमयगं पक्खिविऊण आदीविया चियगा, सुसाणोज्झियमत्तगं गहेऊण खमावणलेहो लिहिओ गुरूणं देवीणं य—'सुद्धसहावो होऊण णागरेहिं मइलिओ' त्ति निवेदणं काऊण 'वसुदेवो अग्गिं अइगतो।' मसाणखंभे पत्तं बंधिऊण दुयमवक्कंतो, उम्मग्गेण य दूरं गंतूण मग्गमोइण्णो।

जाणेण य एगा तरुणजुवई ससुरकुलाओ कुलघरं निज्जइ, सा ममं दट्ठूण वुड्ढं वितिज्जियं भणइ—'अम्मो! एस माहणदारगो परमसुकुमारो परिस्संतो आरुभउ जाणं। अम्हं गिहे वीसत्थो अज्ज सुहं जाहिइ त्ति।' भणिओ य मि वुड्ढाए—'आरुहह सामि! जाणं, परिस्संतत्थ।' मया चिंतियं—'जाणट्ठितो पच्छण्णं गमिस्सं' ति—आरूढो मि। पत्ता सुगामं सूरत्थमणवेलाए। तत्थ मज्जिय-जिमिओ अच्छामि।

तस्स य गिहस्स नाइदूरे जक्खाययणं, तत्थ लोगो संठिओ। आगया य नयराओ पुरिसा। ते कहंति—"सुणह जमज्ज वत्तं नयरे— वसुदेवो कुमारो अग्गि पविट्ठो। तस्स वल्लभगो नाम चेडो वल्लभगो। सो किर चितं जलंतिं दट्ठूण अक्कंदमाणो पुच्छिओ जणेण भणइ—वसुदेवो कुमारो अग्गिमइगओ जणवायभीओ, तस्स य वयणं सुणमाणो समंतओ जणो कंदिउमारद्धो। तं च रुण्णसद्दं सोऊण रायाणो णव वि भायरो निग्गया। दिट्ठं च णेहिं कुमारस्स हत्थलिहियं खमावणपत्तं। तं च वाएऊणं रुवंता घय-महुणा परिसिंचित्ता चितं, चंदणागुरु-देवदारुकट्ठेहिं छाएऊणं पुणो पज्जालिउ कयपेयकज्जा सगिहमणुपविट्ठ त्ति।" तं च मे सोऊण चिंता समुप्पण्णा—गूढो संधी, निव्वसंका मे गुरवो 'मओ' त्ति परिमग्गणायरं न काहिंति। ततो सच्छंदं निव्विग्घं जायं वियरियव्वं ति। रत्तिमतिवाहयित्ता अवरेण पट्ठिओ, कमेण पत्तो विजयखेडं नयरं। नातिदूरे य नयरस्स समासण्णे एगम्मि पायवे दुवे पुरिसा चिट्ठंति, ते मं भणंति—'सामि! वीसमह त्ति।' अहं संठिओ। ते पुच्छंति—'के तुब्भे ? कओ वा एह ?' मया भणिया—'अहं माहणो गोयमो, कुसग्गपुराओ विज्जागमं काउं निग्गओ।'



## १७· नलकहा

नलेण वुत्तं—'देवि ! जोयणसयं अरण्णं एयं। अज्जवि पंच जोयणाइं लंघियाइं। धीरा होहि।' एवं उल्लवंताणं ताणं पहे वच्चंताणं पडियारं काउं असक्को अक्को लज्जंतो व निलुक्को अत्थगिरिसिहरं। काणणेसु कंकेल्लिपल्लवेहिं विहिओ पसत्थो सत्थरो नलेण। भणिया दमयंती—'देवि ! सुविऊण एत्थ देहि दिन्नदुक्खमुद्दाए निद्दाए अवसरं। अलं आयंकसंकाए, अहं ते पाहरिओ' त्ति खित्तं सत्थरे नलेण नियनिवसणद्धं। वंदिऊण देवं अरहंतं सरिऊण पंचपरमिट्ठिमंतं पसुत्ता तत्थ दमयंती। निद्दायंतीए तीए नलेण चिंतियं—

"जेसिं ससुरो सरणं लहंति पुरिसा न ते पुरिसलीहं ।
दमयंतीइ पिइहरं ता कह वच्चामि निब्भग्गो ॥१॥
काऊण कुलिसकढिणं हिययं मुत्तुं पियं पि दमयंतिं ।
रंको व्व कहिं पि अन्नत्थ जामि घेत्तूण अत्ताणं ॥२॥
दमयंतीइ अवाओ न कोवि सलिप्पभावओ होही ।
सव्वंगरक्खणकरं कवयं सीलं चिय सईणं ॥३॥"

तओ छुरिएण छिन्नं वसणद्धं । दमयंतीवत्थंचले लिहियाइं नियरुहिरेण अक्खराइं—

"वडरुक्खह दाहिणदिसिहिं जाइ विदब्भिहिं मग्गु ।
वामदिसिहि पुण कोसलिहि जहि रुच्चइ तहिं लग्गु ॥४॥"

'अहं पुण अन्नत्थ वच्चिस्सं ।' तओ असद्दं रुयंतो व्व निहुयक्कमो गंतुं पयट्टो नलो । पियपणइणिं पसुत्तं वलियकंधरं पलोयंतो गंतूण केत्तियं पि भूमिभागं चिंतिउं पवत्तो—'आहारत्थी पसुत्तं बालं एयं अणाहं वग्घो सिंघो वा जइ भक्खेज्ज ता मे का गई ? अओ सूरुग्गमं जाव रक्खामि एयं । पच्चूसे वच्चउ एसा सइच्छाए' त्ति । तओ पडियरित्थो पुरिसो व्व नियत्तो तेहिं चेव पएहिं नलो । भूमिसुत्तं दट्ठूण दमयंतिं चिंतियं तेण—"हा ! दमयंती एगवत्था एगागिणी सुवइ सुन्नारण्णे । अहो ! नलस्स अंतेउरं असूरियंपस्सं । मम कम्मदोसेण इमं अवत्थं गया एसा कमललोयणा । ता किं करेमि, हयासो हं । अणाहं पिव पिययमं महिवीढलुढियं पिच्छंतो वि जं न निल्लज्जो विलज्जामि ता नूणं वज्जघडियो म्हि । एसा अरण्णे मए मुक्का पडिबुद्धा समाणी मम पाडिसिद्धीए जीविएणावि मुच्चिस्सइ । ता पइव्वयं एयं मुत्तूण अन्नत्थ गंतुं न उच्छहइ मे मणं । जीवियं मरणं वा मे इमीए समं होउ । अहवा अवायसयसंकुले अरण्णे अहमेव दुहभायणं होमि । एसा पुण वत्थलिहियं मम आएसं मुणंती गंतूण सयणभवणे सुहेण चिट्ठिस्सइ ।" एवं कयनिच्छओ गमिऊण रयणिं पिययमापडिबोहसमए तिरोहिओ तुरियपयक्खेवं नलो ।

उन्निद्दकमलामोयसुरहिसमीराभिरामे रयणीविरामे दमयंतीए दिट्ठो सुविणो (जहा) आरूढा अहं फलफुल्लमणहरे चूयपायवे । भक्खियाइं मए

तस्स पेसलाइं फलाइं, सहस त्ति वणहत्थिणा उम्मूलिओ सो तो पडिया अहं अंड व्व पक्खिणो खोणीयले। तओ पडिवुद्धा दमयंती नलं अपेच्छिऊण जूहब्भट्ठा हरिणि व्व दिसाओ पलोयंती चिंतिउं पवत्ता—"हा! अच्चाहियं पडियं जं अरण्णे असरणा पिएण विमुक्कम्हि। अहवा पहाए मह वयण-सुद्धिसलिलाणयणत्थं कत्थ वि जलासए गओ भविस्सइ पिययमो। अहवा निरुवमरूवलुद्धाए कीए वि खेयरीए रमणत्थं नीओ भविस्सइ नलो। ते दुमा, ते पव्वया, तं च अरण्णं, एक्को चेव चंदसुंदरमुहो न दीसइ नलो।" एवं अणप्पवियप्पपज्जाउलमणा कयादिसालोया नलं अपेच्छंती भीया सुविणत्थं भाविउं पवत्ता—जो चूयदुमो पुप्फफलसमिद्धो, सो नलो राया। जं मए फलासाओ कओ, तं रज्जसुहमाणणं। जं च सो वणहत्थिणा उम्मूलिओ, तं दिव्वेण रज्जब्भंसं लहाविओ नलो। जं पुण पडिय म्हि तत्तो, तं नलाओ चुक्कम्हि। तो इमिणा सुविणेण दुल्लहं मे दंसणं ति।

ता रोविउं पवत्ता दमयंती मुक्ककंठमुच्चसरं।
कायरमणाण इत्थीण धीरिमा होइ न हि वसणे ॥४॥
"हा नाह! किं तए हं चत्ता! किं तुज्झ होमि भारकरी।
नहि भोगिणो कयावि हु नियकंचुलिया कुणइ भारं ॥५॥

भो वणदेवयाओ! पत्थेमि तुब्भे दंसेह मे पाणनाहं, तस्स पयपंकएहिं पवित्तियं पहं वा। अहवा पक्कवालुकं व फुट्टे हि धरणि! जेण तव्विवरेण पविसिऊण पायाले पावेमि निव्वुइं।" एवं विलवंती वाहजलसारणीहिं अरण्ण-दुमे सिंचंती नलं विणा जले थले कत्थ वि रइं अपावंती सिचयंचले अक्खराइं दट्ठूण दमयंती वियसंतवयणा वाएइ—"नूणं पिययमेण चत्ता अहं देहमित्तेण न चित्तेण। कह अन्नहा आएसदाणेण अणुग्गाहिय म्हि ता गुरुवयणं न पइणो आणं कुणंतीए से निम्मलो इहलोओ। अओ वच्चामि पिउणो घरं। जं पइणो भवणं तं पइं विणा पराभवभवणं चेय नारीणं" ति निच्छिऊण चलिया वडदुमस्स दाहिणदिसामग्गेण, नलं व पासट्ठियं पिच्छंती नलक्खराणि। तीए विमलसीलप्पभावेण पहवंति कदा नोवद्दवा।

●

# १८. महुबिंदु-दिट्ठंतं

कोइ पुरिसो वहुदेसपट्टणवियारी अडविं सत्थेणं समं पविट्ठो। चोरेहिं य सत्थो अब्भाहओ। सो पुरिसो सत्थपरिभट्ठो मूढदिसो परिब्भमंतो दाणदुद्दिणमुहेण वणगएण अभिभूओ। तेण पलायमाणेण पुराणकूवो तणदब्भपरिच्छन्नो दिट्ठो। तस्स तडे महंतो वडपायवो। तस्स पारोहो कूवमणुपविट्ठो।

सो पुरिसो भयाभिभूओ पारोहमवलंबिऊण ठिओ कूवमज्झे; आलोएइ य—अहो तत्थ अयगरो महाकाओ वियारियमुहो गसिउकामो तं पुरिसमवलोएइ। तिरियं पुण चउद्दिसिं सप्पा भीसणा डसिउकामा चिट्ठंति। पारोहमुवरिं किण्हसुक्किला दो मूसया छिंदंति। हत्थी हत्थेण केसग्गे परामुसइ। तम्मि य पायवे महापरिणाहं महुं ठियं। गयसंचालिए य पायवे वायविहूया महुविंदु तस्स पुरिसस्स केइ मुहमाविसंति, ते य आसाएइ। महुरा य डसिउकामा परिवयंति समंतओ।

तस्स एवंगयस्स किं सुहं होइ? जे महुविंदु अहिलसइ तत्तियं तस्स सुहं सेसं दुक्खं ति। उवसंहारो पुण दिट्ठंतस्स—

जहा सो पुरिसो, तहा संसारी जीवो। जहा सा अडवी, तहा जम्मजरारोगमरणवहुला संसाराडवी। जहा वणहत्थी, तहा मच्चू। जहा कूवो, तहा देवभवो मणुस्सभवो य। जहा अयगरो, तहा नरगतिरियगईओ। जहा सप्पा, तहा कोहमाणमायालोहा चत्तारि कसाया दोग्गइगमणनायगा। जहा पारोहो, तहा जीवियकालो। जहा मूसगा, तहा कालसुक्किला पक्खा राइंदियदसणेहिं परिक्खिवंति जीवियं। जहा दुमो, तहा कम्मवंधणहेऊ अन्नाणं अविरई मिच्छत्तं च। जहा महुं, तहा सद्दफरिसरसरूवगंधा इंदियत्था। जहा महुयरा, तहा आगंतुगा सरीरुग्गया य वाही।

तस्सेव भयसंकडे वट्टमाणस्स कओ सुहं? महुविंदुरसासायओ केवलं सुहकप्पणा।

●

## १९. सुभद्दापत्तलेहणं

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सोत्कण्ठा सुभद्रा मन्दारिका च)

**सुभद्रा**—(दीर्घं निःश्वस्य सखेदमात्मगतम्) अइ मूढहिअअ, तस्स जणस्स सुमरणं तुह एक्कंतसंतावइत्तअं जाणंतो वि कीस तुमं पुणो वि तं चेअ सुमरेसि। अम्मो चवलाइ लोअणाइ, जस्सि दाव संणिहिदे संपुण्णं दंसणं पि कादुं ण पहवेह, तं चेअ दाणि दंसिदुं अहिलसंताइ कुदो मं आआसेध। हंहो दुव्विदद्धहत्थ, जेण गहिदो तुमं दुम्माणवसणपरवंतो मोएदुकामो आसी, तस्स पुणो वि फंससुहं णिल्लज्जो कहं इच्छसि। अंग वम्मह, अण्णाणुराअपराहीणे वि जणे मं खलीकरंतो किं ति तुह सराणं विणोदलक्खीकरेसि।

**मन्दारिका**—पिअसहि, किं चिंतेसि ?

**सुभद्रा**—ण किं वि।

**मन्दारिका**—किं तदो अण्ण।

**सुभद्रा**—कुदो।

**मन्दारिका**—जं तुए अविच्छिण्णं चिंतिज्जइ।

**सुभद्रा**—(सलज्जम्) जाणंती एव्व कुदो मं पुच्छेसि।

**मन्दारिका**—पण्हो वि तहिं विसए तुह रमइत्तओ त्ति।

**सुभद्रा**—हला, पराहीणे तस्सि जणे समुस्सुअं कीस मं उवहसेसि।

**मन्दारिका**—सहि, दक्खिणमेत्तदिण्णुत्तरं, तं किं ति पुण ण पत्तेसि। (सस्मितम्) अहव विरुद्धोवण्णासच्छलेण असाहारणि तुवम्मि तस्स वहुमइं अघाडेंती अत्ताणं सलाहेसि।

**सुभद्रा**—(सविलक्षस्मितम्) पिअसहि, एसो अंजली। मा खु मं उवहसेसि।

**मन्दारिका**—इअं म्हि तुण्हिक्का।

**सुभद्रा**—(सखेदमात्मगतम्) हंत, किं णु खु एअस्स मअणरोअस्स अवसाणं। जेण णिद्दअपीडिआए भारो मे सरीरं चंपणाअ पडिभाइ। अहव कुदो मे तारिसा भाअवेआ जदो एदं कल्लाणं परिणमिस्सदि। (रोदिति)

**मन्दारिका**—सहि, कुदो दे ओवाअसंका। अहरहं सिज्झंति णिमित्ताइ।

**सुभद्रा**—पिअभासिणीओ खु सहीओ।

**मन्दारिका**—मा तह चिंतिअ। सव्वहा ण विसंवदंति णिमित्ताइ।

**सुभद्रा**—होदु।

**मन्दारिका**—पिअसहि, किं ते मणो लिहइ ?

**सुभद्रा**—हला, सुट्ठु भणिअं। लेक्खं चेअ खु तं।

**मन्दारिका**—किं अणंगलेहकव्वं ?

**सुभद्रा**—(सलज्जम्) तं विअ।

**मन्दारिका**—सहि, भणाहि भणाहि।

**सुभद्रा**—जइ ण मं उवहसिस्ससि, एसा भणिस्सं।

**मन्दारिका**—ण एअं उवहासट्ठाणं।

**सुभद्रा**—तेण हि सुणाहि।

**मन्दारिका**—अवहिद म्हि।

**सुभद्रा**—(अनुस्मृत्य) लज्जदि भणिदुं जीहा।

**मन्दारिका**—तेण हि अहिलिहिअ दंसेहि।

**सुभद्रा**—सहि, तह।

**मन्दारिका**—कुदो दाणिं उवअरणाइ।

**सुभद्रा**—हला, एक्कं असोअपल्लवं उवणेहि। जदो तहिं णिवडंतवाह-सलिलोल्लिएण इमिणा थणंगराअहरिचंदणरसेण णहग्गतूलिआधरिएण लिहिस्सं।

मन्दारिका—सहि, सोहणाइ अणंगलेहोवअरणाइ। ता एसा आणेमि। (उत्थाय नाट्येन निकृत्योपनयति)।

(सुभद्रा आदाय तथा विलिखति)

मन्दारिका—सहि देहि, वाचइस्सं।

सुभद्रा—वाहेदि मं लज्जा। जाव तुण्हिक्का मणेण वाएहि।

मन्दारिका—तह करिस्सं। (लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा) सहि, साहु साहु। गहीरमहुरा वाचोजुत्ती। (तथा करिष्यामि)

सुभद्रा—पसंसा वि उवहासो मे पडिभासइ।

मन्दारिका—एसा अहं ण पसंसिस्सं। सो एव्व परं पसंसेदु।

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं तेण वि जणेण एदं दक्खिदव्वं।

मन्दारिका—अण्णहा कहं अणंगलेहो भवे।

सुभद्रा—हला, कुदो मं लहूकरेसि।

मन्दारिका—(लेखं विलोक्य) जह एदाइ अक्खराइ सुत्थिदाइ भविस्संति तह एअं करअलफंसासहं एत्थ एव्व असोअक्खंधे मुहुत्तअं पि समप्पिस्सं।

सुभद्रा—हला, कदमं खु सो भूमि महाभाओ अलंकरेदि।

मन्दारिका—जा वा का वा होदु णिवासभूमि। किं तेण। तं पुण महाभाअं इह एव दक्खिस्ससि। जदो तुह दंसणादो पहुदि एसा तस्स विणोदभूमि।

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम पिअसहीवअणं समस्सासणमेत्तं ण हवे।

# २०. कूरो चेडो य पहसणं

क्रूरः—(मदं नाटयन्, सवहुमानम्)

अवि जश्श णामहेयं शुलाशुला निशमिऊण वेवंति ।
एशे शे खु क्कूले विज्जाहलभेलवे अहके ॥१॥

अह य—

मंतेण व जंतेण व तंतेण व णत्थि दुक्कलं णाम ।
मह एत्तियम्मि लोए के अण्णे मालिशे पुलिशे ॥२॥

चेटः—(उपसृत्य) शामिअ एशे अहके पणवेमि ।

क्रूरः—पियशिश्शा, जावज्जीवं मं शुश्शूशेहि ।

चेटः—एशे दाशे अणुगहिदे । एदाइ णवुउप्पलाइ ।

क्रूरः—अले हितालअ, एत्तिअं वेलं किं ति तुमे विलंविअं ?

चेटः—शामिअ, अय्ये खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणए दाणि तुमं पडिवालेंते चिट्ठइ । तं खु दट्ठूण चिलाइदं ।

क्रूरः—किं ति एण्हिं तुण्हिक्के चिट्ठशि ? वाशेहि दाव उप्पलेहिं कुंभाशवं ।

चेटः—(हास्यं निरुन्धन्, आत्मगतम्) शु कहाणं जाणिदे मए अवशले । (प्रकाशम्) जं शामी आणवेदि । (यथोक्तमनुतिष्ठति)

क्रूरः—अले हितालअ, एहि दाव ।

उल्लाशंते तिशूलअ णच्चंते अ जहाशमीहिअं ।
गाअंते महुलं धुवं विहिए विहलेमि शंपदं ॥३॥

(परिक्रामतः)

क्रूरः—(सहर्षं गायति)

शुहं पिवंतए शाहुपशण्णअं पए पए खलंते अ विशंथुलं ।
महाणुभावए णिब्भलमत्तए शदा विजेदु विज्जाहलभेलवे ॥४॥

अह अ—

शलशं णिहिदुप्पलअं शुलअं पिविऊण मए वि घडंतशुभे।
विहलेमि चलेमि खलेमि अले अहके कुलुले कुलुले कुलुले ॥५॥

(स्खलन्)

अले कहं चलेदि पुढवी—

(सहासम्)

होदि विइअं खु एदं मं वलिअं मदभलेण णिब्भलिअं।
अशमत्था धालेदुं शच्चं खु वशुंधला चलइ ॥६॥

अले हिंतालअ, आवज्जेहि एत्थ आपाणअचशअम्मि कुंभएण वालुणिं। अहव तेण एव्व कुंभएण आअलं पिविश्शं। (तथा कृत्वा) अले शविशेशं खु शुलशा एशा शुला। (मदं नाटयन्) कहं मं विणा एक्कं महापुलिशं शामण्णमाणुशं शुलोएदि वलाए लोए। ता पडिवोहिश्शं दाव।

शुणुथ शुणुथ शव्वे शव्वहा शज्जणा ए।
मह चिअ चलणाणं शाहु शुश्शूशएह॥
पिविअ पिविअ हालं खेलखेलं खलंते।
विहलइ चलअंते जे शलीलं शलीलं ॥७॥

**चेटः**—(निर्वर्ण्य) कहं अदिभूमिं आलूढे शामिणो मदभले।

तह हि—

गंडूशिअ शंपदं शुलं मुह णिट्ठीवइ शीहलच्छडं।
विज्जाहलभेलवे शअं शशलीले शअले पिहं पिहं ॥८॥

**क्रूरः**—(परितोऽवलोक्य) अले कहं पलिदो वि पलावेदि शुलाशमुद्दए।

**चेटः**—कहं शुलामअभावदाए शव्वदो इमश्श पलाशमुद्दए पडिहाअइ।

**क्रूरः**—(वीचिसम्पातं नाटयति) कहं उव्वेलआ एदे तलंगआ। अले हिंतालअ, एहि तलिश्शम्ह। (तरणं नाटयन्)

शमुच्चलंते लहलीशदेहिं शुलासमुद्दे शहशम्हि मग्गे ।
अले अले किं अहके कलिश्शं कहं तलिश्शं अहवा पिविश्शं ॥८॥

(श्रमं नाटयन्) अले वलिअ खु दाणिं अहके पलिश्शंते । ता एद पलिश्शमं इमिणा मंतजवेण शमइश्शं ।

शुंडा शुला पशन्ना कल्ला काअंवली महू शीहू ।
मइला मज्जं महुला मेलेई वालुणी हाला ॥१०॥
(पुन: पुन: पठति)

**चेट:**—कहं पलिश्शते दाणिं शामी ।

**क्रूर:**—अले कुत्थ एण्हि विश्शमिश्शं ।

**चेट:**—(आत्मगतम्) पलिश्शते विअ शामिणो मदे । ता विण्णविश्शं दाव । (प्रकाशम्) शामिआ, अज्जे खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणम्मि को कालो शामिणं पडिवालेदि ।

**क्रूर:**—अले हिंतालअ, किं ति खु एत्तिअं वेलं तुम्हे ण भणिदं ।

**चेट:**—शामिआ, भणिदं खु मए पुव्वं । शामिणा मदभलपलवशेण ण आअण्णिदं ।

**क्रूर:**—हुं, मे पमादे । जाव तहिं गमिश्शामो ।

**चेट:**—इदो इदो ।

**चेट:**—शामिआ, एअं खु जिण्णुज्जाणं ।

(उभौ प्रविशत:)

**चेट:**—(अङ्गुल्या निर्दिश्य) शामिआ, एशे खु अज्जलद्धहूदी तुह आअमणं पडिवालेदि ।

# १. पंच सालिकणाणं सत्ति

## (धान के पाँच बीजों की शक्ति)

**प्रस्तुत पाठ का महत्त्व :** भारतीय परिवारों में जो भी समस्याएं अथवा विषमताएँ देखी जाती हैं, उनका वहुत कुछ सम्वन्ध स्त्रियों से वताया गया है। विश्लेषण करने से इसका कुछ औचित्य भी सिद्ध होता है; क्योंकि स्त्रियाँ जन्म से ही अपने माता-पिता के घरों में विविध संस्कारों के वीच पलती हैं और उन्हीं से प्रभावित भी रहती हैं। विवाहोपरान्त जव वे अपनी ससुराल आती हैं, तव कुछ तो अपने को उस परिवार के अनुसार वना लेती हैं और कुछ अपने को तदनुरूप नहीं ढाल पातीं, जिससे विषमताएँ उत्पन्न होती हैं।

प्रस्तुत कथानक में ऐसी चार पुत्रवधुओं की कथा वर्णित है, जो विविध संस्कारों के साथ अपने पतिगृह में आती हैं। लेखक ने उनका वड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

लेखक ने चतुर्थ कनिष्ठा पुत्रवधू रोहिणी का चित्रण वहुत ही सुन्दर, एवं रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। उसकी सवसे वड़ी विशेषता यह है कि वह अपनी गृहस्थी की छोटी-से-छोटी तुच्छ वस्तु को भी व्यर्थ नहीं समझती; क्योंकि उसकी धारणा है कि जिस प्रकार एक-एक वूँद से घड़ा भर जाता है और उसकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है, उसी प्रकार छोटी-से-छोटी तुच्छ वस्तु भी गृहस्थी के निर्माण एवं संचालन में वहुमूल्य सिद्ध हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, रोहिणी की अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि छोटे-से-छोटे अवसर का भी वह मूल्यांकन करती है। धान के पाँच बीजों को वह अपनी जेठानियों की तरह तुच्छ समझकर उनकी उपेक्षा नहीं करती, अपितु वह उन्हें भी वहुमूल्य समझकर उसका सदुपयोग करती है। यही कारण है कि परिवार में कनिष्ठा होने पर भी रोहिणी को प्रमुखता मिल गई और उसकी ज्येष्ठाओं (जेठानियों) को अपमानित होना पड़ा।

**कथासंक्षेप** : राजगृह नाम की नगरी में धन्य नाम का एक महाधनी सेठ निवास करता था। उसकी प्रकृति से भद्र सुभद्रा नाम की गृहिणी थी। उसके धनपाल, धनदेव, धनगोप एवं धनरक्षित नाम के चार पुत्र थे। वे सभी अत्यन्त सुन्दर, कलाओं में कुशल एवं सौजन्यपूर्ण थे। उनकी पत्नियाँ भी श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न कन्याएँ थीं उनके नाम क्रमशः इस प्रकार थे : श्री, लक्ष्मी, धना एवं धन्या। वे अपने पिता, अर्थात् ससुर की कृपा से निरन्तर सुख का अनुभव करती रहती थीं।

जब सेठ वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ, तब किसी एक दिन उसने अपना परलोक सुधारने की चिन्ता करते हुए विचार किया : "इन पुत्रों को मैंने इतने समय तक सुखी रखा है। अभी ये पुत्रवधुएँ भी मेरे सामने मेरे घर में हैं, अतः ये मेरे मन के अनुसार ही काम करती हैं। किन्तु मैं तो, घर की चिन्ता से तभी मुक्त हो सकूँगा, जब ये मेरे बाद भी मेरी इच्छा के अनुकूल बनी रहें। किन्तु, इसका ज्ञान मुझे अपनी बुद्धि से अभी ही कर लेना चाहिए।" इस प्रकार विचार कर, उस सेठ ने उन पुत्रवधुओं की बुद्धि की परीक्षा के लिए अपने घर में एक उत्सव किया, जिसमें उसने उन पुत्रवधुओं के रिश्तेदारों एवं घर के लोगों को निमन्त्रित किया और उन सभी को भोजन कराकर गौरव का अनुभव किया।

भोजनोपरान्त उस धन्य नामक सेठ ने उन सभी रिश्तेदारों को अपनी चित्रशाला (ड्राइंग रूम) में सुखपूर्वक बैठाया और पुष्प, गन्ध, ताम्बूल आदि से सभी को सम्मानित किया। फिर, उनके समक्ष उसने अपनी चारों पुत्रवधुओं को बुलाया और उन्हें धान के पाँच-पाँच बीज देकर इस प्रकार कहा : "इन बीजों को भली भाँति सुरक्षित रखना और जब मैं उन्हें माँगूँ, तब मुझे दे देना।" यह कहकर उसने उन सभी को विदा कर दिया।

पुत्रवधुओं ने वहाँ से लौटकर अपने मन में तर्क-वितर्क किया कि धान के इन बीजों को देने में क्या रहस्य है? सबसे बड़ी पुत्रवधू ने उन धान के पाँचों

वीजों को फेंक दिया और यह सोचने लगी कि ससुर धान के उन पाँच वीजों को जव भी माँगेंगे, तव मैं उन्हें कहीं से भी लाकर दे दूँगी। दूसरी पुत्रवधू ने भी ऐसा ही विचार किया, किन्तु उसने उन्हें फेंका नहीं, वल्कि छीलकर खा गई। तीसरी पुत्रवधू ने एक शुद्ध वस्त्र में उन्हें वाँधकर अपने आभूषणों की पेटी में रख दिया और तीनों सन्ध्याओं में वह उनका दर्शन करने लगी। चौथी पुत्रवधू ने उन वीजों को अपने नैहर भेज दिया। वर्षा ऋतु के आते ही उन्हें खेतों में वो दिया गया और उत्क्षेपण-प्रतिक्षेपण की क्रिया प्रारम्भ कर दी गई। इस कारण पहले वर्ष में ही एक कुलक धान हो गया, दूसरे वर्ष में एक आढ़क; तीसरे वर्ष में एक खारी, चौथे वर्ष में एक कुम्भ और पाँचवें वर्ष में एक हजार कुम्भ धान से भर गए।

पाँच वर्षों के वाद उस धन्य सेठ ने पुनः सभी रिश्तेदारों को वुलाकर सभी के आगे अपनी वड़ी पुत्रवधू से धान के उन पाँच वीजों को माँगा। उसने वड़ी ही कठिनाई से स्मरण कर कहीं से धान के पाँचों वीजों को लाकर देते हुए कहा : "धान के उन पाँच वीजों को तो मैं सुरक्षित नहीं रख सकी थी, उन्हें मैंने दूसरी जगह से लाकर दिया है।" दूसरी पुत्रवधू ने भी ऐसा ही किया और कहा : "मैंने तो उन पाँच वीजों को फेंका नहीं था, वल्कि खा गई थी।" तीसरी पुत्रवधू ने वस्त्र में वँधे धान के उन पाँच वीजों को समर्पित करते हुए कहा : मैं उनकी सुरक्षा करती रही।" चौथी पुत्रवधू, रोहिणी ने चावी सौंपते हुए कहा : "धान के पाँचों वीज मेरे पिता के घर में सुरक्षित हैं। गाड़ी आदि भेजकर मेरे पिताजी के पास से मँगवा लीजिए।" यह सुनकर सेठ ने पूछा : "हे पुत्री, तूने यह कैसे किया?" रोहिणी ने उत्तर दिया। "मैंने अपने पिता को धान के पाँचों वीज भेजते समय उनकी सुरक्षा के लिए कहा था। उन्होंने मेरे संकेत को समझकर ठीक तरह उनकी रक्षा की है।" तव सेठ ने अपने अभिप्राय को पूरा होते देख उन पुत्रवधुओं के घरों से आए हुए वन्धुओं से पूछा : "इन चारों पुत्रवधुओं ने धान के पाँचों वीजों की सुरक्षा अपने-अपने ढंग से की ही। उसके आधार पर उन्हें आगे से गृहस्थी की जिम्मेदारी किस रूप में सौंपी जाय?

यह सुनकर उन लोगों ने कहा : "इस विषय में तो आप ही बुद्धिमान् हैं, अतः आपका निर्णय ही प्रामाणिक होगा।" तब सेठ ने अपना निर्णय करते हुए कहा : "मेरी सबसे बड़ी पुत्रवधू तो चीजों को फेंक देती है, इसलिए अब आज से घर में राख, गोइठा (कण्डे) आदि जो सामग्री है, वही सब उसके अधिकार में रहेगी। घर में जो भी अनाज, बरतन आदि सामग्री है, और घर की सफाई तथा भोजन आदि बनाने के जो भी कार्य हैं, वे सब दूसरी पुत्रवधू के अधिकार में रहेंगे। तीसरी पुत्रवधू भाण्डागार की स्वामिनी बनकर रहेगी। किन्तु, चौथी पुत्रवधू समस्त चल-अचल सम्पत्ति की स्वामिनी होगी। उसके आदेश से ही घर-परिवार के सभी लोग कार्य करेंगे। अन्य सभी पुत्रवधुएँ उसके सुख से सुखी रहने का अनुभव करती रहेंगी। इस प्रकार, उस सेठ ने सबका निर्णय कर दिया। उसी समय से उन सभी पुत्रवधुओं के नाम बदलकर इस प्रकार प्रसिद्ध हो गये—उज्झिता, भोगवती, रक्षिता एवं रोहिणी। इसके बाद धन्य सेठ का घर सुव्यवस्थित हो गया।

सभी लोगों ने उस सेठ की बड़ी प्रशंसा की। दीर्घदर्शी एवं धर्म करने में समर्थ व्यक्ति ही घर की ऐसी व्यवस्था सोच सकते और कर पाते हैं।

## कठिन शब्दों के अर्थ

सालिकणाणं = धान के बीजों की
सत्ति = शक्ति
रायगिहे = राजगृह में
नयरे = नगर में
महाधणो = महाधनी
सेट्ठी = सेठ
होत्था = था
पयइभद्दाए = प्रकृति से भद्र
सुभद्दाए = सुभद्रा
गेहिणीए = गृहिणी, पत्नी के
चउरो = चार
पुत्ता = पुत्र
धणपालो = धनपाल
धणदेवो = धनदेव
धणगोवो = धनगोप
धणरक्खिओ = धनरक्षित
सव्वेवि = सभी
काइं = कितने
गिहकज्जाइं = गृहकार्य आदि
कलाकुसला = कलाकुशल

सोजन्नपुन्ना = सौजन्यपूर्ण
घरिणीओ = गृहिणी
पहाण = प्रधान
कुलुब्भवाओ = कुलोत्पन्न
कमेणं = क्रम से
सिरी = श्री
लच्छी = लक्ष्मी
जणयपसाएण = पिता की कृपा से
निच्चं = नित्य
सुहिया = सुखी
विहरंति = रहते थे, विचरते थे
परिणयवओ = वृद्धावस्था आने पर
परलोगहियं = परलोक-हित
काउकामो = करने की इच्छा
एत्तियं = इतना
कया = किया, की
परिच्छा = परीक्षा
ऊसवो = उत्सव
मइ = मेरा
पव्वइएवि = वैराग्य लेने पर भी
सुत्थिया = सुस्थित, प्रसन्न
हवंति = होते हैं
एयासिं = इसके लिए
उच्चिय त्ति = उचित है
हुं = मैं
नायं = जान लिया

पुन्नाहिया = अधिक पुण्य
नायव्वा = जानना चाहिए
लोयवाओ = लोकापवाद
कम्माणुसारिणी = कर्म के अनुसार
एमाइ = ये
चिंतिऊण = विचार कर
पारद्धा = प्रारम्भ किया
दाऊण = देकर
सम्मं = ठीक प्रकार से
पालेयव्वा = पालना, सुरक्षित रखना
जया = जब
मग्गामि = माँगूं
समप्पियव्वं त्ति = दे देना
तासिमप्पणो = उनका अपना
सयणवग्गो = स्वजनवर्ग
भोयाविओ = भोजन कराया
सगौरवं = गौरवसहित
भुत्तुत्तरे = भोजनोत्तर
सुहनिविट्ठो = सुखपूर्वक बैठे
चित्तसालिगाए = चित्रशाला में
समाणिओ = सम्मान किया
कुसुमविलेवण = पुष्प-विलेपन
तंबोलाइणा = ताम्बूल आदि से
तस्समक्खं = उसके समक्ष
धण्णेणाहूया = धन्य ने बुलाया
सुण्हाओ = पतोहुएँ

सालिकणे = शालिकण
नवरं = कभी नहीं
छोलिऊण = छीलकर
पक्खित्ता = फेंक दिया
तइयाए = तीसरी ने
सुद्धवत्थे = शुद्ध वस्त्र में
वंधिऊण = बाँधकर
करंडिगाए = पेटी में
ठविया = रख दिया
विसज्जिओ = विदा दी
किमेत्थं = यह क्या
सवियक्को = वितर्क-सहित
तत्थ = वहाँ
जेट्ठसुण्हाए = ज्येष्ठा पुत्रवधू ने
उज्झिया = फेंक दिया, उपेक्षा कर दी
जाइस्सइ = माँगेंगे
कट्टु = करके
पुणोवि = पुनः
मग्गिया = माँगा
जेट्ठसुण्हा = जेठी पुत्रवधू
तीएवि = उसने भी
किच्छेण = कष्टपूर्वक, कठिनाई से
सरिऊण = स्मरण कर
समप्पिआ = समर्पित किया
कुओवि = कहीं से भी
कणा = कण
सब्भावो = सद्भावपूर्वक
छोल्लिऊण = छीलकर
भुत्तत्ति = खा लिया
कुलहरे = कुलगृह में
पाउसे = वर्षा ऋतु में
वविया = वो दिया
पढमवरिसे = प्रथम वर्ष में
आढगं = आढ़क (माप)
तइयवरिसे = तीसरे वर्ष में
खारी = खारी (माप)
कुंभा = कुम्भ (माप)
कुंभसहस्साणि = हजारों कुम्भ
जणयगिहेसु = पिता के कर में
सगडाइपेसणेण = गाड़ी आदि भेजकर
आणावेउ = मँगवा लें
ताओ = पिता ने
कीस = किसका
पालेयव्वा = पालन करना चाहिए
एए = ये
सम्मं = ठीक
नियाहिप्पायं = अपना अभिप्राय
साहिऊण भणिया = जानकर कहा
तव्वंधुणो = उसके वन्धुओं को
किमेत्थ = इसमें क्या
गंठिवद्धा = गाँठ में बाँधकर
कुंचियाओ = चाभी, कुंजी

तेहिं = उन्होंने
वुद्धिनिउणा = बुद्धिनिपुण
पमाणं = प्रमाण, सबूत
वुत्तं = कहा
उज्झणसीला = फेंकनेवाली
जं = जो
मज्झगिहे = मेरे घर में
अहिगारो = अधिकार
किंचि = कुछ भी
रंधणकंडणसोहणाइ = भोजन बनाना, चुनना, सफाई करना आदि
तंमि = उसमें
निओगो = नियोग (नियुक्ति)
भंडागारसामिणी = भाण्डार की स्वामिनी
सव्वाहिगारिणी = सर्वाधिकारिणी
आएसेण = आदेश से
सेसाहि = शेष सभी
हिंडियव्वं = काम करना, घूमना-फिरना
सुहभाइणीओ = सुखभागिनी
भविस्संति = होंगी
तप्पभिइ = उसी समय से
तासिं = उनकी
भोगवई = भोगवती
उज्झिया = उज्झिता
रोहिणी = रोहिणी
लोएण = लोगों ने
सलाहिओ = प्रशंसा की
तेणावि = उसने भी
हियइच्छियं = हृदय से इच्छित
दीहदंसी = दीर्घदर्शी, दूरदर्शी
धम्मारिहोत्ति = धर्म करने में समर्थ

## गृहकार्य के लिए अभ्यासार्थ प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।
२. "पारिवारिक कथाओं में 'पंचसालिकणाणं सत्ति' नामक कथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
३. पठित पाठ के आधार पर निम्नांकित पाँचों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   १. धण्णो, २. उज्झिया, ३. भोगवई, ४. रक्खिया, ५. रोहिणी।
४. "जीवन में कोई भी वस्तु एवं अवसर तुच्छ नहीं।" प्रस्तुत कहानी के आधार पर इस उक्ति की समीक्षा कीजिए।

## अभ्यासार्थ कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द

सालिकणाणं, सत्ति, होत्था, पयइ, सुण्हा, ऊसवो, चित्तसाला, छोलिऊण, पक्खित्ता, कुलओ, आढगं, खारी, मग्गिया, गंठिबद्धा, साहिओ, नवरं, कुंचिया, कीस, अहिप्पायं साहिऊण, कुंभा।

## कुछ शब्दों पर व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ

**तेणं कालेणं** : तस्मिन् काले—विभक्ति-नियम के अनुसार, आर्ष-प्राकृत में सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति होती है, अतः यहाँ सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति हो गई है।

**होत्था** : अभूत्—भू धातु के स्थान पर प्राकृत में 'हो' आदेश और भूतकाल में 'त्था' प्रत्यय होता है। अतः, प्रथमपुरुष के एकवचन में भूतकाल का रूप 'होत्था' वनता है।

**जत्थ** : यत्र—संस्कृत शब्द के आदि में आनेवाला 'य' प्राकृत में 'ज' हो जाता है तथा यथानियम 'त्र' के स्थान पर विकल्प से 'त्थ' आदेश होता है। अतः, 'यत्र' का 'जत्थ' बन जाता है।

**पासिऊण** : दृष्ट्वा—दृश् + तूण; दृश् धातु के स्थान पर पास् आदेश होता है और प्रत्यय के पूर्व इकार का आगम होने तथा तकार का लोप होने से पूर्वकालिक क्रिया का रूप 'पासिऊण' वनता है।

**तम्मि** : तस्मिन्—तत् शब्द के सप्तमी के एकवचन में तम्मि रूप वनता है।

**पगड्ढिज्जमाणे** : प्रकृष्यमाणः—प्र के र और कृ के ऋ का लोप होने से प्र के स्थान पर प, और कृ के स्थान पर क, और फिर क के स्थान पर शौरसेनी की प्रवृत्ति के अनुसार ग हो गया है। पुनः प्रेरणार्थक प्रयोग होने से इज्ज का संयोग और कृत्-प्रत्यय 'माण' जुड़ने से 'पगड्ढिज्जमाणे' रूप वना है। अर्धमागधी का प्रयोग होने से विसर्ग का एत्व हुआ है।

**उवागच्छित्ता** : उप + गम् + ल्यप्—प्राकृत में संस्कृत के प के स्थान पर व होता है। 'गम्' धातु के स्थान पर आर्ष-प्राकृत में 'गच्छ' आदेश होता है और ल्यप् प्रत्यय के स्थान पर 'इत्ता' होता है। अतः, 'उपागत्य' के स्थान पर 'उवागच्छित्ता' रूप बना है।

**वंदित्ता** : वन्दित्वा—'वद्' धातु के स्थान में 'वंद' आदेश होता है तथा पूर्वकालिक कृत्-प्रत्यय 'इत्ता' जोड़ देने से 'वंदित्ता' सिद्ध होता है।

**वयासी** : अवदत्—'वद्' धातु के द का लोप और अ स्वर शेष तथा 'य' श्रुति होने पर वय हुआ; पश्चात् भूतकाल का 'सी' प्रत्यय तथा उसके पूर्व स्वर का दीर्घ कर देने से 'वयासी' रूप बना है।

# २. रमणोए पराभूअ-सिकन्दरस्स कहा

## [रमणी द्वारा पराजित सिकन्दर की कथा]

**महत्त्व** : विश्व के राजनीतिक इतिहास में सिकन्दर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईसा-पूर्व की चौथी सदी के विश्व-इतिहास तथा विशेष रूप से उत्तर-पश्चिम-एशिया एवं भारत के इतिहास को उसने अत्यधिक प्रभावित किया है। उस समय यदि भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य का अभ्युदय न हुआ होता, तो भारत-भूमि पर भी उसकी विजय-पताका फहराने लगती। किन्तु, महामति चाणक्य की अभूतपूर्व प्रतिभा एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के पराक्रम ने उसे भारत की उत्तरीय सीमा पर ही आतंकित कर दिया और देश के बाहर खदेड़ दिया था।

**कथावस्तु** : प्रस्तुत पाठ में सिकन्दर के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का अंकन किया गया है। जब वह विश्व-विजय की आकांक्षा से, यूनान से प्रशिक्षित विशाल सेना के साथ निकलता है, तब अनेक देशों पर विजय प्राप्त करता हुआ ईरान देश आ पहुँचता है और वहाँ विजय प्राप्त कर वह ईरान देश की राजधानी में घूमने की इच्छा से घोड़े पर बैठकर निकलता है।

घूमते-घामते वह उस स्थान पर निकल जाता है, जहाँ ईरान के राजा की राजकुमारी निवास करती थी। वह देखने में बड़ी सुन्दर थी। सिकन्दर को अपनी ओर आते देख वह बड़ी आश्चर्यचकित होती है। सिकन्दर जैसे ही उसकी ओर बढ़ने लगता है कि उसे अपने गुरु के उपदेश याद आ जाते हैं। गुरु ने एक बार उसे उपदेश देते हुए बताया था कि "जो व्यक्ति अपने जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह दूसरों की बहू-बेटियों की ओर कुदृष्टि से न देखे, बल्कि उम्र में बड़ी महिलाओं को माता के समान, समान उम्रवाली महिलाओं को बहिन के समान एवं अपनी उम्र से छोटी महिलाओं को बेटी के समान माने। जो व्यक्ति इस उपदेश को ध्यान में नहीं रख सकता, वह जीवन में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।" सिकन्दर को जैसे ही ये गुरुवाक्य स्मरण आते, वैसे ही वह उस सुन्दरी से बात किये बिना ही वापस चला जाता।

सिकन्दर की स्थिति बड़ी ही उलझनों से भरी हुई रहती है। वह बार-बार उस युवती के निवास पर जाता है, किन्तु गुरुवाक्य स्मरण आते ही वापस चला जाता है। एक बार अवसर पाकर वह युवती कन्या सिकन्दर से उसका कारण पूछती है, तो सिकन्दर उसे स्पष्ट कह देता है कि महिलाओं के प्रति हमारे गुरु अरस्तू की धारणा बड़ी प्रतिकूल है। वे उनका सम्पर्क सफलता-प्राप्ति के मार्ग में विघ्नकारक मानते हैं।

अरस्तू की इस विचारधारा पर युवती को बड़ा क्रोध आ जाता है और उसे इसकी सीख देने का विचार करती है। एक दिन अवसर पाकर वह अपनी साज-सज्जा कर अरस्तू के निवास के समीप आकर सुन्दर गाना गाती है, जिसे सुनकर अरस्तू उसपर मोहित हो जाता है। सिकन्दर तो यह चाहता ही था। जब गुरु-शिष्य का आमना-सामना होता है, तब सिकन्दर गुरु से कहता है कि क्या उपदेश दूसरों के लिए ही होते हैं? क्या वे स्वयं अपने ऊपर लागू नहीं होते? अरस्तू अपने शिष्य के रहस्यपूर्ण कथन को सुनकर तिलमिला उठता है, किन्तु फिर समझाता हुआ उसे कहता है: "जो

युवतियाँ वृद्धावस्था से जर्जर साधुओं को भी मोहित कर सकती हैं, वे फिर युवकों को तो सहज ही आकृष्ट कर सकती हैं। किन्तु, जिस युवक के सामने विश्वविजय का महान् कार्यक्रम हो, वह यदि प्रारम्भ में ही उनके मोह-जाल में पड़ जाय, तो क्या वह सफल हो सकता है?"

गुरु के स्नेहपूर्ण वचनों से प्रबोधित सिकन्दर अपने अपराधों के लिए गुरु से क्षमा-याचना करता है और आगे से उस गलती को न दुहराने की प्रतिज्ञा करता है।

## कथानक के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

इस कथानक से निम्नांकित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है :

१. सिकन्दर एक महान् वीर एवं पराक्रमी युवक था, जो अपनी महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर प्रशिक्षित विशाल सेना लेकर विश्वविजय के लिए निकल पड़ता है।

२. वह वीर होकर भी अहंकारी नहीं, वरन् विनम्र और गुरुभक्त है। युद्ध-प्रसंगों में गुरु के पथ-प्रदर्शन की आकांक्षा से वह अपने विद्यागुरु अरस्तू को साथ लेकर चलता है।

३. अपनी युवावस्था के उन्माद में वह एक बार ईरान की राजकुमारी पर मोहित होकर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होने की स्थिति में आता है और गुरु द्वारा अपमानित होकर उनसे रुष्ट हो जाता है, किन्तु शीघ्र ही वह अपनी भूल समझकर उनसे क्षमा-याचना कर लेता है। यह उसकी लघुता नहीं, अपितु हृदय की विशालता ही मानी जायगी।

४. प्रस्तुत कथानक में सिकन्दर एक महान् सेनापति के रूप में उपस्थित हुआ है। मौर्यकालीन इतिहास से पता चलता है कि वह कई लाख सैनिकों को लेकर विश्वविजय के लिए निकला था। विदेशों पर विजय, विशाल सेना का संचालन, अनुशासन, प्रशासन एवं सन्तोषजनक सैन्य-व्यवस्था के कारण वह प्राचीन काल के सर्वश्रेष्ठ सेनापतियों में अग्रगण्य माना जाता है।

५. प्रस्तुत कथा की घटना अन्यत्र नहीं मिलती। अतः, सिकन्दर के प्रामाणिक जीवन को चित्रित करने की दृष्टि से यह प्राचीन प्राकृत-कथा भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है और इतिहास की शृंखला की एक टूटी हुई कड़ी को जोड़ती है।

## कठिन शब्दों के अर्थ

दुसहस्सवासाओ = दो हजार वर्ष
गीसविसए = ग्रीस (यूनान) देश में
महाराया = महाराज
बालत्तणाओ = बचपन से ही
तस्स = उसका
रायनीइवियक्खणो = राजनीति में विचक्षण (चतुर)
'एरिस्टोटलो' = अरस्तू (यूनान का एक महान् दार्शनिक)
सया = सदा
आणाए वट्टमाणो = आज्ञा के अधीन
चत्तकामभोगाहिलासो = कामभोग आदि की अभिलाषा छोड़कर
जस = यश
कित्ति = कीर्त्ति
विजयकंखिरो = विजय का आकांक्षी
पुव्वं = पहले
साहसिओ = साहसी
महासूरो = महान् वीर
आसि = हुए, थे
आरब्भ = प्रारम्भ कर, लेकर
अज्झावगो = अध्यापक
सम्मग्गदंसगो = सन्मार्ग दिखानेवाला
असाहारणो = असाधारण
विउसवरो = श्रेष्ठ विद्वान्
अहेसि = था
गुरुसेवापरो = गुरु की सेवा में तत्पर
जोव्वणे = युवावस्था में
परंगणासु = परस्त्रियों में
दिट्ठि = दृष्टि, नजर
अकुणंतो = नहीं डालकर
गुरुणो = गुरु के
पहावेण = प्रभाव से
अणेगदेसविजयं = अनेक देशों पर विजय
कासी = कर ली
एगया = किसी एक दिन
काउं = करने की
इच्छंतो = इच्छा करता हुआ
नियनयराओ = अपने नगर से
निग्गओ = निकला

खुहा = क्षुधा, भूख
परिस्समं = परिश्रम
पवलूसाहजुओ = प्रवल उत्साह के साथ
जयंतो = जीतता हुआ
कमेणं = क्रम से
समागओ = आया, आ पहुँचा
काओ = किया, वनाया
वाहिरं = वाहर की ओर
ठविअं = रखकर, स्थापित कर
उज्जाणमज्झे = उद्यान के मध्य में
आसारूढो = अश्व पर सवार होकर
विविहपएससोहं = प्रदेश की विविध शोभा को
गच्छमाणो = चलता हुआ, जाता हुआ
महरिसीणं = महर्पियों के
वीसपसिद्धो = विश्व में प्रसिद्ध
सव्वदिसाविजयं = सभी दिशाओं पर विजय को
पवलसेणापरिवारिओ = प्रवल सेना के साथ
मग्गे = मार्ग में
पिवासा = प्यास
अगणंतो = न मानकर
दूसहेज्जनरिंदवग्गे = दुस्सह (दुर्जेय) नरेन्द्र (राज)-वर्ग को
इराणदेसे = ईरान देश में
तत्थ = वहाँ
महानयराओ = महानगर से
सिविरं = शिविर
सयं = स्वयं
भव्वपासाए = भव्य प्रासाद (राजमहल) में
गिरिसिहरमालालंकियं = गिरिशिखरों की पंक्ति से अलंकृत
निरिक्खंतो = निरीक्षण करता हुआ
नियरूवनिज्जिअदेवंगणं = अपने रूप-सौन्दर्य से देवांगनाओं को भी पराजित कर देनेवाली
चित्तक्खोहकारिणिं = चित को क्षुब्ध कर देनेवाली
सुंदरिं = सुन्दरी को
अच्चब्भुयरूवा = अति अद्भुत रूपवाली
ताडित्ता = मारकर, त्रस्त कर
कामविसयविसमूच्छियं = कामविषय के विप से मूर्च्छित
सवलो = सवल, वीर
असमत्थो = असमर्थ
निच्चलो = निश्चल
विमोहित्ता = विमोहित कर
समीववट्टि = समीपवर्त्ती
चेट्ठा = चेष्टा
दट्ठूण = देखकर
जायक्खोहो = क्षुब्ध होकर

संजाओ = हो गया
नियपरक्कमवत्तं = अपने पराक्रम की वातों की
तम्मिय = उसी
सहासमक्खं = सभा के समक्ष
विजइक्करसियाणं = केवल विजय के लिए उत्सुक, रसिक,
दंसणमेत्ताओ = दर्शनमात्र से
वीरियं = वीर्य, शक्ति
एगं = एक
पासेइ = देखता है
ससिणेहनयणकडक्खेहिं = स्निग्ध नेत्र-कटाक्षों से
कामग्गहगसिओ = काम-रूपी ग्रह से ग्रस्त
पासेमाणो = देखे जाने पर
विमूढमणो = किंकर्त्तव्यविमूढ
तत्थच्चिय = वहीं पर
ठिओ = ठहर गया, रुक गया
नियट्ठाणे = अपने स्थान पर
सव्वा = सभी
निरिक्खिआ = देखा, निरीक्षण किया
पुणरवि = पुनः, फिर भी
मंतिसेणावइपमुहसुहडवराणं = श्रेष्ठ मन्त्री, सेनापति और प्रमुख योद्धाओं के
समागंतूणं = आकर
अवहेलेइ = अपमान करने लगा
पुरिसाणं = पुरुषों के

इत्थी = स्त्री, महिला
रूवावलोगणं = रूप-सौन्दर्य का अवलोकन
हणेइरे = हरण कर लेता है
नरिंदाणं = नरेन्द्रों, राजाओं का
हलाहलमिव = हलाहल विष के समान
सत्थेसु = शास्त्रों में
गणिआ = गिना, माना गया है
विसमविसाओ = विषम विष से
अवहिलित्ता = अपमानित कर
नियावासे = अपने आवास में
गुरुस्स = गुरु के
सुमरंतो = स्मरण करता हुआ
निंदिओ = निन्दा की
मउणेण = मौनपूर्वक
काऊण = करके
सहेइ = सहन किया
अच्चंतदूमिओ = अत्यन्त दुःखी
कियंतं = कुछ
ठाऊण = ठहरकर, रुककर
आगओ = आ गया
दिट्ठसुंदरीए = देखी हुई सुन्दरी के
अप्पणो = अपनी
दढिमं = दृढ़ता को
निण्णयं = निर्णय
थिरीकरेइ = स्थिर किया
इंदियाणं = इन्द्रियों की
पवलत्तणेण = प्रवलता से

घरंमि = घर में

अच्चंतहरिसचित्ता = अत्यन्त हर्षित चित्तवाली

संभरियगुरुवयणो = गुरु के वचनों का स्मरण कर

पराइओ = पराजित हो गया

नट्ठं = नष्ट

वइस्संति = कहेंगे

एयाए = इसको, इसके लिए

वियारित्ता = विचार करके

पवट्टइ = उद्यत हुआ

मणोभावं = मन के भाव को

गच्छेह = जाओ, जाते हो

निवारेइ = निवारण किया

संपयाए = सम्पदा से

खोहेउं = क्षुब्ध, विचलित करने के लिए

वरागो = बेचारा

विणासेमि = विनष्ट कर दूं

इराणनरिंदपुत्ती = ईरान नरेन्द्र की पुत्री

चरणेसु = चरणों में

उवरि = ऊपर

सद्धा = श्रद्धा

रूवासत्तो = रूप के प्रति आसक्त

मुहाओ = मुख से

गुरुकयनियतिरक्कारवुत्तंतं = गुरु द्वारा किये गये अपने तिरस्कार-सम्बन्धी वृत्तान्त को

सोच्चा = सुनकर

अईव = अतीव, अत्यन्त

रोद्दसरूवा = रौद्रस्वरूप

समत्तत्थीणं = समस्त स्त्रियों के

अवमाणं = अपमान को

पइण्णं = प्रतिज्ञा

काहं = कर लूं

जीविएणं = जीवित रहने से

वयस्स = व्रत, व्रती का

नाणस्स = ज्ञानी का

गणणा = गिनती

सव्वपोग्गलियसुहाओ = समस्त पुद्गल वस्तुओं के सुख से

धम्मत्थसल्लिहणतल्लिच्छो = धर्मार्थ के कार्यों में संलग्न

रूववई = रूप-सौन्दर्यवाली

असमत्था = असमर्थ

सिया = हो

कयावि = कभी, कदापि

जायंति = उत्पन्न होते हैं।

मयप्पायं = मृतप्राय

तहवि = तो भी

गुरुकयनारीविसयावमाणं = गुरु द्वारा किये गये नारी-सम्बन्धी अपमान को

कोहेण = क्रोधपूर्वक

पयंडा = प्रचण्ड

वएइ = बोला

सत्तीए = शक्ति से
अज्जाहं = आज मैं
पायपडणसीलं = पैरों में गिरा हुआ
नयणवाणपुरओ = नेत्ररूपी वाणों के सामने
अणुभवस्स = अनुभव का
वएइ = कहा
वट्टइ = है
अज्झप्पचिंतणपरो = अध्यात्म—अपनी आत्मा के चिन्तन में तत्पर
कावि = कोई भी
चालिउं = विचलित करने में
मणूसो = मनुष्य
हियर्य = हृदय को
विसयउम्मीओ = विषय-वासना का उन्मीलन
होज्जा = हो सकता है
सरेण = स्वर से
नयणकडक्खेहिं = नेत्र के कटाक्षों से
सजीवियं = जीवनपूर्ण, सरस
अवस्सं = अवश्य
साहसकम्मं = साहसिक कर्म को
वीयदिणंमि = दूसरे दिन
धम्मसत्थत्थचिंतणिक्कपरो = धर्मशास्त्रों के अर्थ के चिन्तन में एकाग्र रूप से संलग्न
उज्जाणे = उद्यान में
महुरसरेण = मधुर स्वर से

गाणसवणे = गान सुनने में
खणमेत्तं = क्षणमात्र में
सत्थत्थाइं = शास्त्रों के अर्थ आदि
महुरज्झुणीए = मधुर ध्वनि से
समाणो = होने पर
आकड्ढियचित्तो = आकृष्टचित्त
खणंमि = क्षणभर में
गत्ताइं = शरीर आदि
वायायणे = वातायन में
वाहिरं = बाहर
उग्घाडियमत्थयं = माथा उघारे हुए
गयगामिणि = गजगामिनी
संचरमाणि = चलती हुई
अच्छरगणाणं = अप्सराओं के
दिव्वसरेण = दिव्य स्वर से
पासित्ता = देखकर
सोम्मायं = मदोन्मत्त
नियकज्जकरणपरा = अपने कार्यों के करने में तत्पर
पच्चूसकाले = सवेरे-सवेरे
अच्चब्भुयवेसधारिणी = अत्यन्त अद्भुत वेष धारण किये हुए
समागंतूण = आकर
तीए = उसने
पसुपक्खिणो = पशु-पक्षियों के
मूढा = मूढ, मोहित, विस्मृत
चिंतमाणो = चिन्तन करता हुआ

अक्खित्तो = आकृष्ट
तग्गीयसवणेण = उसके गीत सुनने से
वामूढो = व्यामूढ, मोहित
सिढिलीभूयाइं = शिथिल हो गये
निरूवणत्थं = देखने के लिए
ठाऊण = रुककर, ठहरकर
संखुद्धं = अधिक क्षुब्ध
पासेइ = देखा
नियंबयावलंबमाणदीहकेसिं = नितम्बों तक लटकनेवाले लम्बे केशोंवाली
पराभवंतिं = पराजित करती हुई
रमणिज्जरूवं = रमणीय सौन्दर्य को
जराजज्जरिअदेहो = वृद्धावस्था से जर्जरित देह
जायतिव्वकामाहिलासो = तीव्र कामाभिलाषा की उत्पत्ति
रूवसोहं = रूप-शोभा को
मयणानलदद्धो = मदनाग्नि से दग्ध
चित्तखोहेण = चित्त के क्षुब्ध होने से
कामभोगाइं = कामभोगादि
ईसिं = मन्द-मन्द, कुछ-कुछ
लज्जं = लज्जा को
वएइ = वोली
पूरसु = पूरा करो
सेविस्सामि = सेवा करूँगी
घोडगीभूयतुम्हाणमुवरिं = घोड़े के समान बने हुए तुम्हारे ऊपर

वाहेमि = हाँकूँ
जावज्जीवं = जीवनपर्यन्त
वट्टिस्सं = रहूँगा, रहूँगी
आरोहित्ता = सवार होकर
वाहेइ = हाँका
तत्थागंतूण = वहाँ आकर
माहप्पं = माहात्म्य, महत्त्व को
पुरिसा = पुरुष
विम्हरियगुरुसिणेहो = गुरु के स्नेह को भुलाकर
इत्थीओ = स्त्रियाँ
उज्जाणमज्झे = उद्यान के मध्य में
दट्ठूण = देखकर
सुंदरीखंधे = सुन्दरी के कन्धे पर
हिट्ठम्मि = नीचे, धरती की ओर
कामेमि = चाहता हूँ
भुंजसु = भोग करो
विहसिअ = हँसकर, मुस्कराकर
धरंती = धारण करती हुई
पइण्णं = प्रतिज्ञा को
अहोनिसं = अहर्निश, प्रतिदिन
रूवविमोहिओ = रूप से विमोहित
तुरंगीभूअ = घोड़ा जैसा बनकर
पइण्णा = प्रतिज्ञा
उववेसित्ताणं = वैठाकर
धरित्ता = धारण कर
आणाए = आज्ञा से

तिव्वरागपासवद्धो = तीव्र राग-रूपी जाल में बँधा हुआ
सण्णापेरिओ = संकेत पाकर
तयवत्थं = उस अवस्था में
तणायंति = तृण के समान तुच्छ
पुव्वुत्तं = पूर्वोक्त
गुरुवायं = गुरु-वाणी को
नरगदुवारसमाओ = नरक के द्वार के समान
सत्तिमंता = शक्तिवाले
इच्चाइं = इत्यादि
सुणावित्ता = सुनाकर
कत्थ = कहाँ
नायपरमट्ठो = परमार्थ जानकर
मोहाओ = मोह से
तुमं = तुम
नाणं = ज्ञान
सुट्ठुत्तणेण = ठीक से, भली भाँति
होज्जा = होता, हो
जइ = यदि
मारिसं = मेरा जैसा
नाणज्झाणासत्त = ज्ञान-ध्यान में आसक्त
समत्था = समर्थ
करिस्सइ = करेगी
मए = मेरा
उवहसेइ = हँसती है
मुरुक्ख = मूर्ख

नियावासे = अपने आवास पर
झाणमग्गो = ध्यान में मग्न
तत्तण्णू = तत्त्वज्ञ
एयाणं = इनके
अवुहा = अवुध, मूर्ख
तुम्हाणमुवएसो = तुम्हारा उपदेश
उवहसेइ = हँसी उड़ाई
वच्छ = वत्स, पुत्र
खलियं = स्खलित, चूका हुआ
दिण्णं = दिया
हिययंमि = हृदय में
धरियं = धारण किया
उवहसेज्जा = हँसी उड़ाते
एसा = यह
अवत्थं = अवस्था को
काउं = करने में
जुव्वणुम्मत्तस्स = यौवनोन्मत्त का
किंकरीभूए = सेवक बनकर
मइसामत्थेण = वुद्धि के सामर्थ्य से
दुण्णि = दोनों ही
कहित्ता = कहकर
गंतूण = जाकर
वियारिंति = विचार करते हैं
महापुरिसो = महान् पुरुष
पुरओ = सम्मुख
वालग = वालक
च्चिय = निश्चय

## गृहकार्य के लिए अभ्यासार्थ प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।

२. सिकन्दर कौन था ? वह किस उद्देश्य से अपने राज्य से निकला था ?

३. उसका गुरु कौन था ? उसने विश्व-विजय के आकांक्षी सिकन्दर को क्या शिक्षा दी थी ?

४. पठित पाठ के आधार पर सिकन्दर के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

५. अरस्तू एवं ईरान की राजकुमारी के चरित्र पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ प्रस्तुत करें।

६. निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी-रूप प्रस्तुत करें (इनके अर्थ कठिन शब्दों के प्रकरण में खोजें) :

पराभूअ, रूवासत्तो, गीसविसए, वरागो, अज्झावगो, पइण्णं कासी, सव्वपोग्गलियसुहाओ, निग्गओ, मणूसो, सिविरं, वट्टइ, ठिओ, संखुद्धं, सावहाणचित्तो, इत्थीओ, अवहिलित्ता, मुरुक्ख, पासेमि, तत्तण्णू, सच्चिय, पुरओ, झायंतो, अवुहा, इंगियागारेणं।

●

# ३. विउसोए पुत्तवहूए कहाणयं

## ( विदुषी पुत्रवधू की कहानी )

**कथावस्तु** : किसी नगर में लक्ष्मीदास नामक एक समृद्ध सेठ निवास करता था। वहुत अधिक धन-सम्पत्ति के कारण वह अहंकारी हो गया था। निरन्तर भोग-विलास में आसक्त रहने के कारण वह कभी धर्मकार्य नहीं करता था। उसका पुत्र भी उसी के समान था। उसका पुत्र जव युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसने धर्मदास नाम के एक धर्मात्मा की शीलवती नाम की

पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया। वह पुत्री यथानाम तथागुण थी। वह कन्या जब आठ वर्ष की थी, तभी उसने अपने पिता की प्रेरणा से एक साध्वी के पास सर्वज्ञ-धर्म का श्रवण कर विधिपूर्वक अणुव्रतों को धारण कर लिया था और इस प्रकार वह सर्वज्ञ-धर्म में बहुत ही निपुण हो गई थी।

कुछ समय के बाद जब वह अपनी ससुराल आई, तब ससुर आदि को धर्म से विमुख देखकर अतीव दुःखी हुई। 'यहाँ मेरे व्रत का निर्वाह कैसे होगा, देव एवं गुरु से विमुख ससुर आदि के लिए धर्मोपदेश कैसे दिया जाय ?' इसी विषय में वह विचारमग्न रहने लगी। किसी एक समय 'यह संसार असार है, यह लक्ष्मी भी सारविहीन है, यह देह भी विनाशशील है, केवल एक धर्म ही है, जो निश्चय से परलोक सुधारने की इच्छा रखनेवाले जीवों के लिए श्रेष्ठ आधार के समान है', इस प्रकार का उपदेश देकर उसने अपने पति को सर्वज्ञ-धर्म का उपासक बना दिया। इसी प्रकार, कुछ समय के बाद उसने अपनी सास को भी प्रतिबोधित किया और अपने ससुर को प्रतिबोधित करने के अवसर की खोज में वह रहने लगी।

अन्य किसी एक दिन उस विदुषी पुत्रवधू के घर श्रमण-गुणसमूह से अलंकृत, महाव्रती और ज्ञानी एक युवक साधु भिक्षा माँगने के लिए आये। युवावस्था में भी व्रतों को धारण कर लेनेवाले, शान्त एवं दान्त साधु को घर में आया हुआ देखकर और उनके आहार ले चुकने के बाद उसने अपने मन में विचार किया : "युवावस्था में महाव्रतों को ग्रहण करना अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी, इन्होंने इस युवावस्था में इन व्रतों को कैसे ग्रहण कर लिया ?" ऐसा सोचकर परीक्षा लेने के लिए उसने समस्या के रूप में साधु से पूछा : "अभी समय नहीं आया, फिर भी उसके पूर्व आप कैसे निकल पड़े ?" उस साधु ने भी उस विदुषी पुत्रवधू के हृदय के गूढ भाव को जानकर उत्तर देते हुए कहा : "ज्ञान ही समय है। मृत्यु कब हो जायगी, इसका कुछ पता नहीं, इसीलिए समय आये बिना ही मैं निकल पड़ा हूँ।"

वह पुत्रवधू उनके उत्तर को सुनकर तथा उसके रहस्य को समझकर सन्तुष्ट हो गई। पुनः मुनि ने भी उससे पूछा : "तुम कितने वर्ष की हो?" मुनि के पूछने के रहस्य को जानकर उसने उत्तर में, स्वयं बीस वर्ष की हो जाने पर भी, अपनी उम्र केवल बारह वर्ष की ही बताई। पुनः उस साधु ने पूछा : "और, तुम्हारा पति कितने वर्ष का हो गया है?" यह पूछे जाने पर उस पुत्रवधू ने, अपने पति के पच्चीस वर्ष के होने पर भी, उसकी उम्र केवल पाँच वर्ष की ही बताई और इसी प्रकार उसने अपनी सास की उम्र भी छह महीने की ही बताई। जब उससे ससुर की उम्र पूछी गई, तब उसने उत्तर में कहा : "उनका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ।" पुत्रवधू एवं साधु में जब इस प्रकार का वार्त्तालाप हो रहा था, तभी भीतर बैठे उसके ससुर ने उसे ध्यानपूर्वक सुन लिया।

भिक्षा ग्रहण करने के बाद जब साधु चला गया, तब उसके घर में बड़ा कोलाहल होने लगा; क्योंकि पुत्रवधू ने ससुर के उत्पन्न नहीं होने के सम्बन्ध में कहा था। इस कारण ससुर अपनी बहू से रूठ गया और अपने पुत्र को उस बात की सूचना देने के लिए वह दुकान की ओर जाने लगा। अपने ससुर को इस प्रकार भूखा जाते हुए देखकर पुत्रवधू ने कहा : "हे ससुरजी, आप भोजन करने के बाद जाइए।" यह सुनकर ससुर ने उत्तर दिया : "जब मेरा जन्म ही नहीं हुआ है, तब मैं भोजन कैसे कर सकता हूँ?" इस प्रकार कहकर वह दूकान चला गया। वहाँ अपने पुत्र से समस्त वृत्तान्त सुनाते हुए उसने कहा : "तुम्हारी पत्नी दुराचारिणी तथा असभ्य वचन बोलनेवाली है। अतः, उसे घर से निकाल बाहर करो।" वह पुत्र भी पिता के साथ-साथ अपने घर चला आया। उसने पुत्रवधू, अर्थात् अपनी पत्नी से पूछा : "तुमने माता-पिता का अपमान क्यों किया है और साधु के साथ होनेवाली वार्त्ता में झूठे उत्तर क्यों दिये थे?" यह सुनकर उसने कहा : "तुम जाकर मुनि महाराज से स्वयं पूछ लो। वही सब कुछ कह देंगे।" तब ससुर ने उपाश्रय में जाकर उन मुनि का अपमान करते हुए उनसे पूछा : "हे मुनिराज, आज भिक्षा माँगने के

लिए क्या आप ही मेरे घर आये थे ?" यह सुनकर उसने कहा :"तुम्हारा घर मैं नहीं जानता, तुम कहाँ रहते हो ?"

यह सुनकर सेठ ने मन में विचार किया : "यह मुनि असत्य बोलता है।" फिर भी, उसने उससे पूछा : "आज आपने किसी घर में किसी बालिका के साथ कुछ वार्त्तालाप किया था ?" यह सुनकर मुनि ने उत्तर में कहा : "हाँ, वह बालिका तो अत्यन्त कुशल है। उसने मेरी परीक्षा ली थी। अतः, उसने जब मुझसे पूछा कि "समय के बिना क्यों निकल पड़े ?" तब, मैंने उत्तर देते हुए कहा था : "समय का, अर्थात् मरने के समय का किसी को भी ज्ञान नहीं है, अतः मैं समय के पूर्व की उम्र में ही घर से बाहर निकल पड़ा हूँ।" मैंने भी उसकी परीक्षा लेने के लिए उसके घर के ससुर आदि सभी की उम्र पूछी थी। तब उसने सबके बारे में उत्तर भी ठीक-ठीक दिये थे।" सेठ ने पूछा : "ससुर का जन्म ही नहीं हुआ है, यह पुत्रवधू ने कैसे कहा ?" यह सुनकर मुनिराज ने उत्तर में कहा : "यह प्रश्न तो उसी से पूछा जाय; क्योंकि विदुषी कन्या ही उसके यथार्थ भाव को जानती है।" तब, ससुर ने घर आकर उस पुत्रवधू से पूछा : "उस मुनि के सम्मुख तुमने यह कैसे कहा था कि "मेरे ससुर का अभी जन्म ही नहीं हुआ है।"

तब पुत्रवधू ने कहा : "हे ससुर, धर्महीन का मनुष्य-जन्म प्राप्त करना भी उसके लिए नहीं प्राप्त करने के ही समान है; क्योंकि सत्य-धर्म के आचरण से ही यह जीवन सफल होता है। यदि उसने अपना मनुष्य-जन्म सफल नहीं किया, तो उसका वह जीवन निष्फल ही है। अतः, जब मैंने आपका जीवन धर्म के बिना ही व्यतीत होते हुए देखा, तभी मुनिराज से यह कहा था कि "मेरे ससुर का तो अभी जन्म ही नहीं हुआ।" इस प्रकार, सत्य अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर वह ससुर सन्तुष्ट हो गया और उसी समय से धार्मिक बन गया। पुनः उसने पूछा : 'तुमने सास की उम्र छह महीने की कैसे कही ?" यह सुनकर उसने कहा : "इसका उत्तर आप सास से ही पूछें।" तब सेठ ने सेठानी से उस प्रश्न को पूछा। उसने भी उत्तर में कहा : "पुत्रवधू का वचन

ही सत्य है; क्योंकि सर्वज्ञ-धर्म का अनुसरण किये हुए मुझे अभी केवल छह महीने ही हुए हैं और इन छह महीनों के पहले मैं मृतक-समान ही थी, अर्थात् मेरा सारा जीवन धर्म के विना व्यर्थ ही व्यतीत हो रहा था ।"

उस नगर में जिस समय उस पुत्रवधू के विविध गुणों की चर्चा होने लगी थी, तभी एक वृद्धा ने कहा था : "नारियों में यही पुत्रवधू श्रेष्ठ है। यह युवावस्था में भी अपनी सास की भक्ति करती है और धर्मकार्यों में कभी प्रमाद नहीं करती। गृहकार्यों में भी यह कुशल है। इस जैसी पुत्रवधू दूसरी नहीं है। इसकी सास अभागी है, जो इस प्रकार के भक्ति-वात्सल्य से युक्त पुत्रवधू द्वारा धर्मकार्य में प्रेरित किये जाने पर भी धर्म नहीं करती। यह सुनकर सास ने वहू के गुणों से प्रसन्न होकर उसके समक्ष धर्मज्ञान प्राप्त कर लिया था। जब उसने छह महीने तक का धर्मकार्य पूरा किया था, तभी उसकी पुत्रवधू ने उसे छह माह की उम्रवाली वताया।"

पुत्र से पूछे जाने पर उसने उत्तर में पिता से कहा : "रात्रि में सदैव धर्मोपदेश देने के क्रम में आपकी पुत्रवधू ने मुझे वताया कि यह संसार असार है। भोग-विलास का परिणाम दुःखदायी है। वरसाती नदी के प्रवाह के समान यौवनावस्था से युक्त देह की क्षणभंगुरता से उत्पन्न होनेवाले दुःखों से व्याप्त इस संसार में एकमात्र धर्म ही सहायक होता है। ऐसा उपदेश दिये जाने पर मैं सर्वज्ञ-धर्म का अनुरागी हो गया हूँ। इसमें मुझे पाँच वर्ष हो गये, इसीलिए आपकी वहू ने मेरी उम्र जो पाँच वर्ष की वताई है, वह सत्य है।" इस प्रकार, कुटुम्ब की धर्मप्राप्ति-सम्बन्धी वार्त्ता तथा विदुषी पुत्रवधू के यथार्थ वचनों को सुनकर वह लक्ष्मीदास प्रतिवुद्ध हो गया और वृद्धावस्था में भी धर्म-आराधनापूर्वक घर-परिवार के अन्य लोगों के साथ धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगा।

**शिक्षाएँ** : जीवन में धार्मिक एवं नैतिक जीवन ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। सभी सम्प्रदायों के साधक-तपस्वियों ने उच्च स्वर से यह उद्घोष किया है कि

यदि जीवन में सत्य, करुणा, अहिंसा, सन्तोष, दान, उदारता आदि की प्रवृत्ति नहीं आई, तो मनुष्य-योनि में जन्म लेना ही व्यर्थ है। धर्महीन मनुष्य एवं पशु में कोई अन्तर नहीं होता। धर्म दिखावा-मात्र नहीं है। वह आत्मा के गुणों के विकास का सर्वोच्च साधन है। धार्मिक जीवन से न केवल परिवार एवं समाज, अपितु राष्ट्र भी नैतिक बल प्राप्त कर अपना विकास कर सकता है। धार्मिक जीवन से व्यक्ति दूसरों का विश्वास आसानी से प्राप्त कर सकता है। आज संसार में इसी भावना के लुप्त हो जाने के कारण जनजीवन में विविध प्रकार की विषमताएँ आ रही हैं, इसीलिए प्रत्येक प्राणी आज निराश, उदास एवं दुःखी है। लेखक ने इसी भावना को व्यक्त करने के लिए इस पाठ को लिखा है तथा इस पाठ के सभी पात्रों को विविध परिस्थितियों में रखकर धार्मिक-अधार्मिक जीवन का तुलनात्मक चित्रण किया है और प्रत्येक मानव को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान की है।

## कठिन शब्दों के अर्थ

कम्मि नयरे = किसी नगर में
लच्छीदासो = लक्ष्मीदास
सेट्ठी = सेठ
वरीवट्टइ = रहता था
वहुधणसंपत्तीए = वहुत धन-सम्पत्ति से
गव्विट्ठो = गर्विष्ठ, अहंकारी
आसि = था
लग्गो = लगा हुआ
एयारिसो = ऐसा
पिउणा = पिता से
धम्मदासस्स = धर्मदास का
सीलवईए = शीलवती का
पाणिग्गहणं = पाणिग्रहण
काराविय = करा दिया
अट्ठवासा = आठ वर्ष का
साहुणीसगासाओ = साध्वी के निकट
सम्मत्तं = सम्यक्त्व, सत्य तत्त्व पर श्रद्धा
गहीयाइं = ग्रहण कर लिये
संजाआ = हो गया
ससुराइं = ससुर आदि को
विमुहं = विमुख
वहुदुहं = वहुत दुःख
भोगविलासेसु = भोग-विलास में
कयावि = कदापि, कभी

जोव्वणे = युवावस्था में
धम्मिअ = धार्मिक
जहत्थनामाए = यथार्थ नामवाली
कन्नाए = कन्या का
पुत्तस्स = पुत्र का
जया = जब
पिउपेरणाए = पिता की प्रेरणा से
सव्वण्णधम्मसवणेण = सर्वज्ञ-धर्म के श्रवण से
अणुव्वयाइं = अणुव्रत आदि को
निउण = निपुण
आगया = आई
धम्माओ = धर्म से
दट्ठूण = देखकर
निव्वाहो = निर्वाह
होज्जा = हो जाय
भवेज्जा = हो जाय
वियारेइ = विचार करती है
लच्छी = लक्ष्मी
विणस्सरो = विनश्वर
परलोगपवन्न = परलोक को प्राप्त
उपएसदाणेण = उपदेश देने से
कओ = किया
कालंतरे = कुछ समय वाद
पडिवोहिउं = प्रतिवोधित करने के लिए
महव्वई = महाव्रती

जोव्वणत्थो = युवावस्था में स्थित
गहीयवयं = व्रत ग्रहण करके
संतं दंतं = शान्त-दान्त
एएण = इसने
नाऊण = जानकर
उत्तं = कहा
मच्चू = मृत्यु
मुणिणा = मुनि से/द्वारा
वारसवासं = वारह वर्ष
अंतट्ठिएण = भीतर वैठे हुए
कोहाउलो = क्रोध से व्याकुल
पत्ती = पत्नी
असब्भवयणा = असभ्य वचन वोलनेवाली
देवगुरुविमुहाणं = देवगुरु से विमुख
असारो = सारहीन
देहोवि = देह भी
च्चिय = निश्चय
जीवाणमाहरु = जीवों का आधार
नियभत्ता = अपना पति
सासूमवि = सास को भी
वोहेइ = समझाया, समझाता है
समणगुणगणालंकिओ = श्रमण-गुणसमूह से अलंकृत
नाणी = ज्ञानी
भिक्खत्थं = भिक्षा के लिए
घरंमि = घर में

महादुल्लहं = महादुर्लभ
हियगयभावं = हृदय के भाव को
साहुणा = साधु द्वारा
समयनाणं = समय-ज्ञान
होस्सइ = होगा
पुच्छाभावं = पूछने का भाव
छम्मासा = छह मास
लद्धभिक्खे = भिक्षा प्राप्त कर
कहणत्थं = कहने के लिए
दुरायारा = दुराचारिणी
माउपिउणो = माता-पिता से
अवमाणं = अपमान
असच्चमुत्तरं = असत्य उत्तर
सावमाणं = अपमान-सहित
मुणी = मुनि, साधु
वट्टा = वार्त्ता
पुच्छिज्जउ = पूछें
भावा = भाव
गच्चा = जाकर
वुत्तं = कहा
अपत्तो = अप्राप्त
सहलो = सफल
निप्फलो = निष्फल
उप्पत्ती = उत्पत्ति
पुट्ठा = पूछा
थीणं = स्त्रियों के (सम्बन्ध में)
वुड्ढाए = वृद्धा ने

नारीण = नारियों के
इमीए = इस
एरिसीए = ऐसी
पेरिज्जमाणावि = प्रेरित किये जाने पर भी
मुहाओ = मुख से
संसारासारदंसणेण = संसार की असारता दिखाने से
परिणामदुहदाइत्तणेण = परिणाम में दुःखदायी होने से
कहिहिइ = कहेगी
भिक्खत्थं = भिक्षा के लिए
वियारेइ = विचार करती है
बालाए = बालिका ने
अईवकुसला = अतीव कुशल
जहत्थो = यथार्थ
नज्जइ = जाना जाता है
किमेवं = क्या ऐसा है ?
माणवभवो = मानव-जन्म
सद्धम्मकिच्चेहिं = सद्धर्म के कार्यों से
मणुसभवो = मनुष्य-भव
च्चिय = निश्चय
सेट्ठिणा = सेठ द्वारा
मरणपसंगे = मरण के प्रसंग में
विविहगुणदोसवट्टा = विविध गुण-दोषों की बात
मज्झे = मध्य में, बीच में

निव्भगा = अभागिन
भत्तिवच्छलाए = भक्तिवत्सला द्वारा
वहुगुणरंजिआ = अनेक गुणों से प्रकाशित
समयधम्मोवएसपराए = ज्ञान और धर्म के उपदेश में तत्पर
भोगविलासाणं = भोग-विलासों का
देहस्स = देह का
खणभंगुरत्तणेण = क्षणभंगुरता से
आराहिअ = आराधना कर
सपरिवारो = परिवार के साथ
वासाणईपूरतुल्लजुव्वणत्तणेण = वरसाती नदी की वाढ़ के समान युवावस्था से
जयम्मि = संसार में
उवदिट्ठो = उपदिष्ट
कुडुंवस्स = कुटुम्ब का
सोऊण = सुनकर
पडिवुद्धा = प्रतिवुद्ध, ज्ञानप्राप्त
सग्गइं = स्वर्ग-गति (स्वर्गति) को
सारु = सार
सव्वण्णुधम्माराहगो = सर्वज्ञ-धर्म का आराधक
जहत्थवयणं = यथार्थ वचन
वुड्ढत्तणे = वृद्धावस्था में
पत्तो = प्राप्त किया

## गृहकार्य के लिए अभ्यासार्थ प्रश्न

१. विदुषी पुत्रवधू के कथानक से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।

२. "विदुषी पुत्रवधू-कथा की नायिका का चरित्र नारी-समाज के उत्थान के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

३. प्रस्तुत कथा की नायिका के किन्हीं ऐसे दो मार्मिक प्रसंगों पर प्रकाश डालिए, जिनमें उसकी चतुराई, धैर्य एवं सहनशीलता की झलक आपको दिखाई पड़ती हो।

४. निम्नांकित शब्दों के हिन्दी-रूप प्रस्तुत कीजिए :

विउसी, सेट्ठी, धम्मिअस्स, अणुव्वय, लच्छी, एगो, एएण, नाऊण, समओ, तुट्ठं, पंचवासा, छम्मासा, पुट्ठ, सुआ, कुत्थ, वियारेइ, कया, उत्तं, सोऊण, उवदिट्ठो।

# ४. कस्सेसा भज्जा

## ( यह किसकी पत्नी )

**कथावस्तु** : हस्तिनापुर में शूर नामक राजपुत्र के सुमति नाम की एक सुन्दरी कन्या थी। जब वह विवाह के योग्य हुई, तब उसके पिता, भाई, मामा और माता ने चार विभिन्न राजकुमारों के साथ उसका विवाह-सम्बन्ध एक ही तिथि को निश्चित कर दिया। विवाह की नियत तिथि पर वे चारों राजकुमार बरात सजाकर उस नगर में आए। अब माता-पिता के सामने बहुत विकट समस्या उपस्थित हो गई कि इस कन्या का विवाह किस राजकुमार के साथ किया जाय।

वे चारों ही राजकुमार अपना-अपना अधिकार जताते हुए युद्ध करने की धमकी देने लगे।

जब कन्या को यह पता लगा कि उसके कारण ही भयानक युद्ध होनेवाला है, तब वह लकड़ियों की चिता बनाकर उसमें प्रविष्ट हो गई और देखते-देखते ही चिता की लपटों ने उसे भस्म कर दिया।

वे चारों राजकुमार सोचने लगे कि अब क्या किया जाय। एक राजकुमार तो इस दृश्य से इतना दुःखी हो गया कि वह स्वयं ही उस चिता में कूदकर जल मरा। दूसरा राजकुमार कन्या के भस्म को समीपवर्त्ती नदी में प्रवाहित करने के लिए चला गया और तीसरा राजकुमार उसके विरह से व्यथित होकर परदेश जाने को तैयार हो गया एवं चौथा राजकुमार वहीं रुककर उस चिता की रखवाली करने लगा।

जो राजकुमार परदेश चला गया था, वह घूमता-घामता एक नगर में पहुँचा और वहाँ एक गृहस्थ का अतिथि बन गया। सन्ध्या के समय उस गृहस्थ के घर जब वह भोजन कर रहा था, तभी उस (गृहस्थ) का छोटा बच्चा रोता-कलपता वहाँ आया। उसके करुण क्रन्दन से रुष्ट होकर उस गृहस्थ की

पत्नी ने उसे जलते हुए चूल्हे में झोंक दिया। परिणाम-स्वरूप, वह लड़का जलकर भस्म हो गया ।

गृहस्थ-पत्नी के इस क्रूरतापूर्ण कार्य को देखकर उस अतिथि राजकुमार को बड़ा दुःख हुआ। उसे उस महिला के प्रति इतनी घृणा उत्पन्न हुई कि वह अधूरा भोजन छोड़कर ही वहाँ से भागने लगा। उसे भूखा उठते देख उस गृहस्थ-पत्नी ने उससे कहा : "हे अतिथिदेव, आप भूखे मत जाइए। आप मुझे निर्दय न समझिए, सन्तान किसे नहीं प्रिय है। आप जानते ही होंगे कि सन्तान-प्राप्ति के लिए माता-पिता कितने लालायित रहते हैं। अतः, मैं ऐसी दुर्लभ वस्तु को यों ही नहीं जला सकती हूँ। भोजन करने के पश्चात् मैं इस बालक को अवश्य ही जीवित कर लूँगी।"

जब सभी लोग भोजन कर निश्चिन्त हो गये, तब उस गृहस्थ-पत्नी ने अपने पास सुरक्षित अमृत-कलश से कुछ अमृत लिया तथा उसे चूल्हे में छिड़ककर उस मृत बालक को जीवित कर दिया। आश्चर्यचकित और देनेवाले इस कार्य को देखकर वह राजकुमार सोचने लगा कि 'इस अमृत-कलश से यदि मुझे भी थोड़ा-सा अमृत मिल जाय, तो मैं भी उस राजकुमारी को (जो कि चिता में जलकर भस्म हो गई है) जीवित कर लूँ।' अतः, किसी युक्ति से रात्रि में अमृत-कलश चुराकर वह राजकुमार वहाँ से भागा और हस्तिनापुर आया। वहाँ उसने राजकुमारी की चिता पर अमृत छिड़ककर उस कन्या को जीवित कर दिया। उसी समय उस कन्या के साथ भस्म हुआ वह राजकुमार भी जीवित हो उठा।

संयोग से तीनों राजकुमार पुनः वहाँ एकत्र हो गये। जो राजकुमार गंगा में भस्म प्रवाहित करने के लिए गया हुआ था, वह भी लौटकर वहाँ आ गया। इस प्रकार, उन चारों राजकुमारों में उस कन्या के साथ विवाह करने के लिए पुनः विवाद होने लगा। किन्तु, उन चारों राजकुमारों ने विचार किया कि आपस में लड़ने की अपेक्षा राजा के यहाँ जाकर इस विवाद का निर्णय करा लेना ही उचित है। अतः, वे सभी राजदरबार में गये।

उन्होंने अपनी-अपनी वात राजा के समक्ष प्रस्तुत की। इस पेचीदे मुकद्दमे को सुनकर न्यायी राजा ने अपने प्रधान मंत्री से इस मुकद्दमे का निर्णय करने को कहा।

वहुत सोच-विचार के पश्चात् मन्त्री ने निर्णय किया कि "जिसने अमृत छिड़ककर इस कन्या को जीवित किया है, वह जीवन-दान देने के कारण इस कन्या का पिता हुआ। अतः, पिता के साथ कन्या का विवाह कैसे हो सकता है?"

"जो राजकुमार अमृत डालते ही राजकुमारी के साथ जीवित हुआ है, वह साथ जन्म लेने के कारण इस कन्या का सहोदर भाई हुआ। अतः, सहोदर भाई के साथ इस कन्या का विवाह कैसे किया जा सकता है?"

"जिसने इस कन्या का भस्म गंगा में प्रवाहित किया है, वह व्यक्ति पुत्र का कार्य करने से इस कन्या का पुत्र कहलाया। अतएव, पुत्र के साथ भी इस कन्या का विवाह नहीं हो सकता।"

"ऐसी स्थिति में विवाह का एकमात्र अधिकारी वही राजकुमार है, जो घूम-घूमकर चिता की रखवाली करता रहा है।"

मन्त्री के इस निष्पक्ष निर्णय को सुनकर सभी राजकुमार एवं अन्य उपस्थित लोग वड़े प्रसन्न हुए और उस कन्या का विवाह सर्वसम्मत निर्णय के अनुसार उक्त चौथे राजकुमार (कुरुचन्द्र) के साथ कर दिया गया।

**कहानी-कला की दृष्टि से समीक्षा :** कहानी-कला की दृष्टि से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि इस कहानी के पात्र पारम्परिक ही हैं। आज की कहानी जहाँ सामान्य जनजीवन का चित्रण करती है, वहाँ प्रस्तुत कहानी को हम प्राचीन पद्धति पर लिखी गई एक पौराणिक कथा कह सकते हैं। किसी भी कहानी में प्रधानतया तीन तत्त्वों की अवस्थिति मानी गई है : १. कौतूहल-वृत्ति, २. कथानक और ३. चरित्र-चित्रण।

कौतूहल-वृत्ति की दृष्टि से यह कथा अपने-आप में अद्भुत है। कहानी आरम्भ होते ही पाठक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उस सुन्दरी राजकुमारी का विवाह किसके साथ होगा। क्या ये चारों राजकुमार आपस में लड़कर मर जायेंगे? इस प्रकार कौतूहल-वृत्ति की दृष्टि से यह कथा पर्याप्त मनोरंजक है। मंत्री के निर्णय को सुनने के लिए राजकुमारों के समान पाठक भी उत्सुक रहते हैं।

प्रस्तुत कहानी का कथानक भी अद्भुत एवं प्रशंसनीय है। कथा का क्रम एक प्रवाह में बँधा हुआ चलता है। इस कथा को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. राजकुमारी का विवाह।

२. राजकुमारी का चिता में जल मरना, उसके साथ एक राजकुमार का भी जल मरना और अन्य तीन राजकुमारों का उसके वियोग में बिसूरना और भटकना।

३. परदेश में भटकनेवाले राजकुमार का किसी नगर में पहुँचकर एक गृहस्थ के यहाँ अतिथि बनना और वहाँ से अमृत-कलश चुराकर उससे राजकुमारी को जीवित करना।

४. राजकुमारी का जले हुए राजकुमार के साथ जीवित होना और मन्त्री के निर्णय के अनुसार राजकुमारी का विवाह चिता की रखवाली करनेवाले राजकुमार (कुरुचन्द्र) के साथ होना।

प्रथम खण्ड का कथानक पाठकों को आनन्द से दुःख की ओर ले जाता है, दूसरे खण्ड का कथानक सीधी रेखा के समान चलता है, तीसरे खण्ड में कथानक साँप की गति से चलता है, और चौथे खण्ड का कथानक मन्त्री की बुद्धि के चमत्कार पर प्रकाश डालता है, जो यथार्थतः इस कहानी की प्राणवन्त परिणति है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कथा अत्यन्त रोचक है। इसमें तीन ही ऐसे पात्र हैं, जिनके चरित्र की झाँकी यहाँ मिलती है।

सर्वप्रथम सुमति नामकी राजकुमारी का चरित्र आता है। राजकुमारी में त्याग-गुण सर्वाधिक है। वह दूसरों की सुरक्षा के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर देती है।

दूसरा चरित्र उस राजकुमार का है, जो भ्रमण करता हुआ गृहस्थ का अतिथि बनता है तथा वहाँ से अमृत-कलश चुराकर उससे राजकुमारी को जीवित करता है। यह कार्य धूर्त्ततापूर्ण होते हुए भी उसके साहस, शौर्य एवं धैर्य का प्रतीक है। इस राजकुमार के चरित्र में तीन बातें प्रमुख हैं : १. प्रेम के लिए सर्वस्व-त्याग। २. दया, जो कि मानवता की जननी है, इसमें वर्त्तमान है। वह गृहस्थ के पुत्र को जलता हुआ देखकर दुःखी होता है और खाना छोड़कर वहाँ से भाग जाना चाहता है। ३. यह राजकुमार न्याय में विश्वास करता है। राजसभा में उसके मन के विपरीत फैसला होने पर भी वह उसे सिर झुकाकर मान लेता है।

इसके बाद उस महामन्त्री का चरित्र आता है, जो अपनी बुद्धि के चमत्कार से सभी को आश्चर्य में डाल देता है। राजमन्त्री का चरित्र निष्पक्ष न्याय के लिए प्रसिद्ध है। यदि इस मन्त्री से जरा-सी भी भूल हो जाती, तो उन चारों राजकुमारों का आपस में लड़ मरना सुनिश्चित था। अतः, बृहस्पति के समान मन्त्री का ज्ञानोज्ज्वल चरित्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। यह चरित्र भी कहानी के पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करने की पूर्ण क्षमता रखता है।

इस प्रकार, इस कहानी में हमें पौराणिकता के साथ-साथ कहानी के यथोक्त तत्त्व भी मिल जाते हैं। आज से हजारों वर्ष पूर्व लिखी जाने के बावजूद इस कथा में जीवन को आन्दोलित करने की पूर्ण क्षमता और प्रासंगिकता विद्यमान है।

## कठिन शब्दों के अर्थ

हत्थिणाउरे = हस्तिनापुर में
सूरनामा = शूर नाम का
रायपुत्तो = राजपुत्र, राजकुमार
वसइ = निवास करता था
भारिया = पत्नी
गंगाभिहाणा = गंगा नाम की
परमसोहग्गसारा = श्रेष्ठ सौभाग्य की सारभूता
तेसिं = उनकी
कम्मपरिणामवसओ = कर्मों के फल के कारण
पुढो = पृथक्, अलग
वराणं = वरों को
चउरो = चारों
परिणेउं = परिणय करने के लिए
परोप्परं = परस्पर
कुणन्ति = करते हैं
विसमे = विषम (स्थिति में)
वहुजणक्खयं = वहुत सारे लोगों का क्षय
पविट्ठा = प्रवेश कर गई
निविडणेहेण = प्रगाढ स्नेह के कारण
वरो = वर
नाणागुणरयणसंजुत्तो = नाना प्रकार के गुणरूपी रत्नों से युक्त
सीलाइगुणालंकिया = शील आदि गुणों से अलंकृत

सुमइनामा = सुमति नाम की
धूया = पुत्री
जणयजणणी = जनक-जननी
भाया-माउलेहिं = भाई और मामा द्वारा
दिन्ना = दे दी गई
एगम्मि दिणे = एक ही दिन में
आगया = आ गये
कलहं = कलह
तओ = तव
संगामे = संग्राम में
जायमाणे = हो जाने पर
दट्ठूण = देखकर
अग्गिम्मि = अग्नि में
समं = साथ
एगो = एक
अट्ठीणि = हड्डियों को
गंगप्पवाहे = गंगा के प्रवाह में
गओ = गया
तत्थेव = वहीं पर
तद्दुक्खेणं = उसके दुःख से
महीयले = पृथ्वी पर
हिंडइ = भटकने लगा
रक्खन्तो = रक्षा करता हुआ
एगमन्नपिंडं = अन्न के एक पिण्ड को
अह = इसके वाद
महीयलं = पृथ्वीतल पर

कत्थवि = किसी
रंधणघरम्मि = रसोईघर में
जिमिउं = जीमने, खाने के लिए
परिवेसइ = परोसती है
लहुपुत्तो = छोटा पुत्र
रोसपरव्वसं = रोष के अधीन
जलणम्मि = अग्नि में
लग्गो = लगा
अवच्चरूवाणि = बच्चे
कए = लिए
अणेगदेवयापूआदाणमंतजवाइं = अनेक देवों की पूजा, दान, मन्त्रजप आदि
अमयरस-कुप्पयं = अमृतरस का घड़ा
खिविउं = डालने के लिए
चिआरक्खं = चिता की राख
जलपूरे = जल के प्रवाह में
मोहमहागह = मोहरूपी महाग्रह
ठाणं = स्थान को
पइदिणं = प्रतिदिन
मुअन्तो = छोड़ता हुआ
गमेइ = व्यतीत करने लगा
तइओ = तीसरा
भमन्तो = घूमता हुआ
गामे = गाँव में
कराविऊण = कराकर

घरसामिणी = गृहस्वामिनी
तया = उसी समय
रोइइ = रोने लगा
गयाए = गई हुई
खिविओ = फेंक दिया
भणइ = बोली
होन्ति = होते हैं
पिउणो = माता-पिता
जीवइस्सामि = जीवित कर लूंगी
विहिऊण = करके
सिग्घं = शीघ्र
नियघरमज्झाओ = अपने घर के भीतर से
आणिऊण = ले आकर
जलणम्मि = अग्नि में
कओ = किया
जणणीए = माता ने
नीओ = ले लिया
अच्छरिअं = आश्चर्य
जीविओ = जीवित
जइ = यदि
अमयरसो = अमृतरस
हवइ = हो जाय
कन्नं = कन्या को
धुत्तत्तेण = धूर्तता से
काऊण = करके, बनाकर

मियरसकूवयं = अमृतरस का घड़ा
मागओ = आया
चिआमज्झे = चिता में
मुक्को = छिड़का, छोड़ा
जीवंती = जीवित होकर
कम्मवसओ = भाग्य से
विवायं = विवाद
अन्नोन्नं = परस्पर
वालचंदरायमन्दिरे = वालचन्द्र नामक राजा के दरवार में
पमाणीकायव्वो = प्रमाणित कीजिए
भज्जइ = सुलझा, सुलझ पाया
रणरंगे = रण, युद्ध
मंते = सलाह
छडुक्खेवो = छिड़काव
हसंतो = हँसता हुआ
उच्छंगे = गोद में
झायइ = विचार किया
एवंविहजलणजलिओ = इस प्रकार अग्नि में जला हुआ
एसो = यह
मह = मुझे, मेरे पास
अहमवि = मैं भी
जीवावेमि = जीवित कर लूंगा
कूडवेसं = कपटवेश
रयणीए = रात्रि में
दुब्भिक्खे = दुर्भिक्ष में
गिण्हिऊण = लेकर, चुराकर
जणयादिसमक्खं = पिता आदि के समक्ष
सालंकारा = आभूषण-सहित
उट्ठिया = उठी
कन्नापाणिग्गहणत्थं = कन्या के साथ पाणिग्रहण के लिए
कहिअं = कहा
भंजिऊण = सुलझाकर
मंतिणो = मन्त्रिगण
केणावि = किसी से भी
आसन्ने = समीप
मूढे = किंकर्त्तव्यविमूढ
तहेव = तथैव, उसी प्रकार
विरलो = विरला, दुर्लभ
जइ मन्नह = यदि मानो तो
रायहंस = राजहंस
गुणदोसपरिक्खं = गुण-दोषों की परीक्षा को
वायं = वाणी, वचन
सहजीविओ = साथ में जीवित
एगजम्मट्ठाणेण = एक साथ जन्म लेने के कारण
खिविउं = डालने के लिए
विवाए = विवाद में
कुरुचंदाभिहाणेण = कुरुचन्द्र नामक राजकुमार के साथ
जोइज्जइ = देखा जाय, जोहा जाय

मंतिणा = मन्त्री ने
जंपियं = कहा
व्व = (के) समान
पक्खवायरहियो = पक्षपातरहित
जम्महेउत्तणेण = जन्म देने के कारण
भाया = (सहोदर) भाई
अट्ठीणि = हड्डियाँ
पच्छापुण्णकरणेण = श्राद्ध-पुण्य करने से
भग्गे = सुलझने पर
परिणीआ = विवाह दी गई

## कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों पर व्याकरणबोधक टिप्पणियां

तीए <तस्या:—तत् शब्द से स्त्रीलिंग में षष्ठी के एकवचन में यह रूप बनता है। तत् के स्थान पर प्राकृत में ती आदेश होता है और षष्ठी के एकवचन में ए प्रत्यय जोड़ देने से 'तीए' रूप बना है।

संजाओ <संजात:—तकार का प्राकृत में लोप होने से अकार शेष रहा है और विसर्ग के स्थान पर ओत्व हो गया है। अत:, 'संजाओ' रूप बना है।

दिण्णं <दत्तम्—प्राकृत में, संस्कृत के 'दत्तम्' के स्थान पर 'दिण्णं' आदेश होता है।

मच्चुं <मृत्युं—प्राकृत में संस्कृत ऋ के स्थान पर अकार आदेश होता है और 'त्यु' के स्थान पर 'च्चु'। अत:, द्वितीया एकवचन में 'मच्चुं' रूप बना है।

सोच्चा <श्रुत्वा—संयुक्त रेफ का लोप, तालव्य श के स्थान पर दन्त्य स और उकार का ओत्व तथा त्व के स्थान पर च्च आदेश होने से 'सोच्चा' रूप बना है।

गंतूण <गत्वा—संस्कृत में पूर्वकालिक क्रिया को बताने के लिए 'त्वा' कृत्-प्रत्यय होता है, पर प्राकृत में इसके स्थान पर 'तूण' प्रत्यय होता है। अत:, 'गम्' धातु में 'तूण' प्रत्यय लगने से 'गंतूण' यह पूर्वकालिक रूप बना है।

हत्थिणाउरे <हस्तिनापुरे—संस्कृत के स्त के स्थान पर प्राकृत में त्थ आदेश होता है। यहाँ न के स्थान पर णत्व तथा पकार का लोप होने से पुरे का 'उरे' रूप बना है। अत:, हस्तिनापुरे का 'हत्थिणाउरे' रूप हो गया है।

भारिया <भार्या—स्वरभक्ति या विश्लेपण के नियमानुसार प्राकृत में संयुक्त व्यंजन पृथक् हो जाते हैं और वीच में स्वर का आगम होता है। अतः, यहाँ र और या पृथक् हो गये हैं और इ का आगम होने से 'भारिया' रूप वना है।

हिंडइ <हिण्ड् धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में इ प्रत्यय जोड़ने से हिंडइ रूप वनता है।

परोप्परं <परस्परम्—द्वितीय वर्ण रकार के उत्तरवर्ती अकार के स्थान पर ओत्व तथा संयुक्त सकार का लोप और प को द्वित्व करने से 'परोप्परं' रूप वना है।

दट्ठूण <दृष्ट्वा—दृश् धातु के स्थान पर 'दट्ठ' आदेश तथा पूर्वकालिक क्रिया का अर्थ वताने के लिए 'त्वा' कृत्-प्रत्यय की जगह 'ऊण' होने से 'दट्ठूण' रूप वना है।

खिविउं <क्षिप्तुम्—क्षिप् धातु के क्ष के स्थान पर ख और प को व आदेश तथा इकार का आगम और तुम् प्रत्यय के त का लोप होने से 'खिविउं' रूप वना है।

अवच्च <अपत्य—प्राकृत में प के स्थान पर व और त्य को च्च हुआ है; अतः अपत्य का 'अवच्च' रूप वना है।

जेसिं <येषाम्—प्राकृत में; संस्कृत के यत् शव्द के स्थान पर ज आदेश होता है और अकार को एत्व तथा सिं' प्रत्यय 'जुड़ने से षष्ठी वहुवचन में 'जेसिं' रूप वना है।

पच्छा <पश्चात्—प्राकृत में अन्त्य हलन्त व्यंजन नहीं रहता, उसका लोप हो जाता है। अतः, त का लोप होने से 'पश्चा' शेष रहा है। इस स्थिति में 'श्च' के स्थान पर 'च्छ' करने से 'पच्छा' रूप वना है।

अच्छरिअं <आश्चर्यम्—आकार का अ और श्च के स्थान पर च्छ, र और य का पृथक् विश्लेपण तथा इ स्वर का आगम होने से 'अच्छरिअं' रूप वना है।

लहिऊण <लव्ध्वा—लभ् के स्थान पर लह् तथा इत्व और ऊण— तूण प्रत्यय जोड़ने से 'लहिऊण' रूप वना है।

पमाणीकायव्वो <प्रमाणीकर्त्तव्यः—'प्र' का 'प' संयुक्त रेफ और मध्यवर्त्ती त का लोप, अ शेष और उसकी यश्रुति, पूर्वस्वर का दीर्घ तथा 'त्य' का 'व्व' होने से 'पमाणीकायव्वो' रूप बना है।

पुच्छइ <पृच्छति—संस्कृत की ऋकार ध्वनि प्राकृत में उकार में बदल गई है तथा तकार का लोप हो जाने से इ स्वर शेष रह गया है। अतः, 'पृच्छति' संस्कृत शब्द से 'पुच्छइ' प्राकृत में बना है।

तेसिं <तयोः, तेषाम्—प्राकृत में द्विवचन नहीं होता, अतः द्विवचन के स्थान में बहुवचन हो जाता है। षष्ठी विभक्ति बहुवचन में तत् शब्द के अन्त्य हलन्त्य व्यंजन त् का लोप हो गया है और पूर्व त के अ स्वर का एत्व तथा बहुवचन का 'सिं' प्रत्यय जुड़ जाने से 'तेसिं' रूप बना है।

धूया <दुहिता—हैमव्याकरण के सूत्र 'दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ' (८।२।१२६) से 'दुहितृ' के स्थान में विकल्प से 'धूआ' आदेश होता है। आ स्वर के स्थान पर यश्रुति होने से 'धूया' बना है।

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में प्रस्तुत करें।
२. प्रस्तुत कथा से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालें।
३. प्रस्तुत कथा के विकास में किस वर का योगदान महत्त्वपूर्ण है? सोदाहरण सिद्ध करें।
४. चारों वरों के पारस्परिक विवाद को किसने शान्त किया और कैसे? अपनी भाषा में लिखें।
५. निम्नांकित शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें (इन शब्दों के अर्थों को कठिन शब्दों के अर्थों में खोजें):

रायपुत्तो, आणिऊण, धूया, उच्छंगे, पुढो-पुढो, कूडवेसं, परोप्परं, मुक्को, अट्ठीणि, परिवेसइ, पिया, लहुपुत्तो, भाया, जलणम्मि, गओ, अमयरसकुप्पयं, ठाणं।

# ५. ससुरगेहवासीणं चउजामायराणं कहा

## (ससुर के घर में रहनेवाले चार दामादों की कथा)

**कथासंक्षेप :** किसी ग्राम में एक राजपुरोहित निवास करता था। उसके एक पुत्र था और पाँच कन्याएँ थीं। उनमें चार कन्याओं का विवाह उसने योग्य ब्राह्मणपुत्रों के साथ कर दिया था और पाँचवीं कन्या का विवाह भी उसने शुभ मुहूर्त में आयोजित किया। उस विवाह में उसने अपने चारों दामादों को निमन्त्रित किया। विवाह की समाप्ति पर सभी रिश्तेदार तो चले गये, किन्तु वे चारों ही दामाद खाने-पीने के लालच में वहीं रह गये।

यह देखकर पुरोहित ने अपने मन में विचार किया कि "ये दामाद अपनी सास के अत्यन्त प्रिय हैं, अतः ये अभी पाँच-छह दिन और रुक सकते हैं, बाद में चले जायेंगे।" किन्तु, खाद्यरस के लालची वे दामाद नहीं गये और परस्पर विचार करने लगे : "मनुष्यों के लिए ससुराल का निवास स्वर्ग के समान सुखदायी होता है।" निश्चय ही, यह सूक्ति सत्य है। इस प्रकार विचार कर उन्होंने उस सूक्ति को दीवार पर लिख दिया। अन्य किसी एक दिन उस सूक्ति को पढ़कर उनके ससुर ने सोचा : "हमारे ये दामाद मधुर खाद्यरस के लोभी हैं, ये कभी नहीं जायेंगे, अतः इनको सावधान करना चाहिए। इसी विचार से उसने सूक्ति के नीचे तीन चरण (पंक्ति) और लिख दिये :

"यदि विवेकी जन पाँच-छह दिन ही रहे।
दही, घी एवं गुड़ का लोभी व्यक्ति यदि एकाध महीना रह जाय,
तो वह निर्लज्ज मनुष्य गदहे के समान मानहीन हो जाता है।"

चारों दामादों ने यद्यपि उन तीनों पंक्तियों को पढ़ लिया, तथापि खाने-पीने के लालची होने के कारण उनकी इच्छा जाने की नहीं हुई। यह देखकर उनके ससुर ने सोचा : "इन लोगों को घर से कैसे निकाला जाय ? क्योंकि

स्वादिष्ट भोजन में रमे हुए ये निर्लज्ज गदहे के समान हैं, अतः इन्हें बुद्धिमानी से निकालना चाहिए।" उस पुरोहित ने अपनी पत्नी से पूछा : "इन दामादों को भोजन में क्या-क्या देती हो ?" यह सुनकर उसने उत्तर दिया : "मैं अपने इन प्रिय दामादों को तीनों समय दही, घी एवं गुड़ से बने हुए मधुर पकवान निरन्तर परोसती रहती हूँ।" यह सुनकर पुरोहित ने कहा : "अब आज से तुम इन दामादों के लिए बाजरे से बनी हुई मोटी रोटी पर घी लगा कर दिया करो।"

अपने पति की आज्ञा को अनुल्लंघनीय समझकर उसने उन्हें भोजन में घी लगी हुई बाजरे की मोटी रोटी परोसना प्रारम्भ कर दिया। उसे देखकर **मणिराम** नाम के जेठे दामाद ने अपने मित्रों से कहा : "अब इस घर में रहना उचित नहीं; क्योंकि इससे अधिक स्वादिष्ट भोजन तो हमें अपने घर में ही मिलता है, अतः अब यहाँ से चला जाना ही अच्छा। अतः, मैं सवेरे ससुर से पूछकर चला जाऊँगा।" **मणिराम** का कथन सुनकर मित्रों ने कहा : 'अरे मित्र, मुफ्त का भोजन कहाँ मिलेगा ? बाजरे की इन मोटी रोटियों को भी स्वादिष्ट मानकर खाते रहना चाहिए। क्या तुमने यह नहीं सुना कि इस संसार में दूसरों के यहाँ भोजन मिलना दुर्लभ है। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम चले जाओ, हमसे तो जबतक ससुर नहीं कहेंगे, तबतक नहीं जायेंगे।" इस प्रकार, मित्रों का कथन सुनकर मणिराम सवेरा होते ही ससुर के पास गया और अपने लिए शिक्षा माँगकर घर जाने की आज्ञा माँगी। ससुर ने उसे शिक्षा दी और आते-जाते रहने का आग्रह किया, फिर उसके साथ कुछ दूर जाकर उसे विदा किया। इस प्रकार, बाजरे की रोटी खिलाकर उसने **मणिराम** नाम के जेठे दामाद को निकाला।

इसके पश्चात् ससुर ने अपनी पत्नी से कहा। "अब आज से तुम अपने दामादों को तिल के तेल से चुपड़ी रोटी खिलाया करो।" पत्नी ने भी भोजन के समय उन दामादों को तिल के तेल से चुपड़ी रोटी देना प्रारम्भ कर दिया। उसे देखकर **माधव** नाम के दामाद ने विचार किया : "ऐसा भोजन तो हमें

घर में भी मिल जाता है, अतः अब यहाँ से चला जाना ही अच्छा।" उसने अपने मित्रों से कहा : "मैं कल घर चला जाऊँगा; क्योंकि अब यहाँ भोजन में तेल आ गया है।" माधव का कथन सुनकर उसके मित्रों ने कहा : "हमारी सास बड़ी विदुषी है। उसने शीत ऋतु के कारण तिल का तेल खिलाना प्रारम्भ किया है, ताकि हमारी पाचन-शक्ति ठीक बनी रहे। अतः, हम तो यहीं रहेंगे।" तब माधव नाम का वह दामाद ससुर के पास गया और उनसे शिक्षा माँगते हुए जाने की आज्ञा चाही। ससुर ने उसे 'चला जा, चला जा' कहकर जाने की आज्ञा तो दे दी, किन्तु शिक्षा नहीं दी। इस प्रकार तिल का तेल खिलाकर उसने **माधव** नाम के दूसरे दामाद को भी भगा दिया।

तीसरा और चौथा दामाद नहीं गया। इन्हें कैसे निकाला जाय, इस समस्या का समाधान खोजकर पुरोहित ने अपनी पत्नी से पूछा : "ये दामाद रात्रि में सोने के लिए कब आते हैं?" तब उसकी पत्नी ने कहा : "कभी एक पहर रात बीत जाने पर आते हैं और कभी-कभी दो-तीन पहर रात बीत जाने पर।" तब पुरोहित ने कहा : "आज रात में तुम दरवाजा नहीं खोलना, मैं रात में जागूँगा।" वे दोनों दामाद सन्ध्या के समय मनोरंजन के लिए गाँव में निकल गये और विविध क्रीड़ाएँ करते हुए तथा नाटक आदि देखते हुए मध्यरात्रि में लौटे। घर के दरवाजे को बन्द देखकर वे उसे खोलने के लिए जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगे : "दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो।" दरवाजे के समीप ही वह पुरोहित जागता हुआ भी नहीं बोला। किन्तु, बार-बार आवाज देने पर उसने पूछा : "आधी रात के समय तक तुम कहाँ थे? अभी दरवाजा नहीं खोलूँगा, जहाँ का दरवाजा खुला हो, वहीं चले जाओ।" यह कहकर वह मौन हो गया। तब वे दोनों ही दामाद समीप में स्थित एक घुड़साल में चले गये। वहाँ बिस्तर के अभाव में वे ठण्ड लगने के कारण घोड़ों की पीठ पर डाले जानेवाले टाटों को ओढ़कर ज़मीन पर सो गये। यह देखकर **विजयराम** नाम के दामाद ने सोचा : "इस प्रकार अपमानित होकर

यहाँ रहना उचित नहीं ।" तब उसने अपने मित्र से कहा : "हे मित्र, कहाँ तो हमें पहले सुखासन मिलता था और अब यहाँ जमीन पर सोना पड़ रहा है ! अतः, यहाँ से चला जाना ही अच्छा ।" यह सुनकर उसके मित्र ने कहा : "इस प्रकार के दुःख में भी पराया अन्न खाने को कहाँ मिलेगा ? अतः, मैं तो यहीं रहूँगा, यदि तुम्हारे जाने की इच्छा हो, तो तुम चले जाओ ।" तब वह सवेरे-सवेरे उठकर पुरोहित के समीप गया और उससे शिक्षा तथा जाने की आज्ञा माँगी । तब पुरोहित ने उसे तत्काल जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार जमीन पर सुलाकर उसने **विजयराम** नाम के तीसरे दामाद को भी भगा दिया ।

अब केवल **केशव** नाम का चौथा दामाद वहाँ रह गया। वह जाना नहीं चाहता था, किन्तु पुरोहित ने उसे भी निकालने का उपाय सोच लिया । एक दिन उसने अपने पुत्र के कान में कुछ कहा और जब वह केशव नाम का दामाद भोजन करने के लिए बैठा, तभी पुरोहित का पुत्र भी उसके पास बैठ गया । वहाँ पुरोहित ने आकर पुत्र से पूछा : "पुत्र, यहाँ मैंने कुछ रुपये छोड़ दिये थे, वे किसने उठाये हैं ?" पुत्र ने कहा । "मैं नहीं जानता ।" पुरोहित ने कहा : "तुम्हीं ने रुपये चुराये हैं । अरे झूठे, पापी, ढीठ, तू उन रुपयों को लौटा दे, नहीं तो मैं तुझे मारूँगा ।" यह कहकर उसने जूता उठाकर पुत्र को मारना प्रारम्भ कर दिया । पुत्र भी मुट्ठी बाँधकर पिता के सामने आ गया । पिता-पुत्र को आपस में जूझते देखकर केशव उन दोनों के बीच में पहुँचा और 'मत लड़ो, मत लड़ो' इस प्रकार कहकर उन दोनों के बीच में खड़ा हो गया, तभी उस पुरोहित ने 'हे दामाद, हे दामाद, हटो-हटो !' कहकर उसे जूते से पीटना प्रारम्भ कर दिया। पुत्र ने भी 'केशव, दूर हटो, दूर हटो !' इस प्रकार कहकर उसे घूँसे मारना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार, पिता-पुत्र दोनों ही केशव को पीटने लगे । उन दोनों की धक्का-मुक्की से पिटता हुआ वह **केशव** वहाँ से शीघ्र ही भाग गया । इस प्रकार, धक्का-मुक्की से पिटकर वह चौथा दामाद **केशव** पुरोहित से बिना पूछे ही अपने घर चला गया ।

उस दिन वह पुरोहित राजसभा में कुछ विलम्ब से पहुँचा। तब राजा ने पूछा : "आज तुम इतने विलम्ब से क्यों आये हो ?" यह सुनकर पुरोहित ने कहा : "विवाहोत्सव में हमारे चार दामाद आये थे, खाने-पीने के लालची होने के कारण वे चिरकाल तक घर में रह गये। जाना नहीं चाहते थे, किन्तु उन सबको मैंने युक्तिपूर्वक निकाल बाहर किया। उन्हें मैंने इस प्रकार निकाला : बाजरे की रोटी खिलाकर **मणिराम** को, तिल का तेल खिलाकर **माधव** को, जमीन पर सुलाकर **विजयराम** को, और धक्का-मुक्की देकर **केशव** को।"

इस प्रकार, पुरोहित ने समस्त वृत्तान्त राजा से कह सुनाया। राजा भी उसकी चतुराई से बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

**उपदेश** : चारों दामादों के अपमान की घटना सुनकर यदि कोई दामाद अपना सम्मान चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह लम्बे समय तक ससुराल में न रहे।

## कठिन शब्दों के अर्थ

कत्थ = कहीं, किसी
नरिंदस्स = राजा के
रज्जसंतिकारगो = राज्य में शान्ति स्थापित करनेवाला
पुरोहिओ = पुरोहित
आसि = था, रहता था
कन्नगाओ = कन्याओं का
पारद्धो = प्रारम्भ
जामाउणो = जामाता
समागया = आये
भोयणलुद्धा = भोजन के लोभी
विआरेइ = विचार करने लगा
खज्ज = खाद्य
रसलुद्धा = रस के लोभी
परुप्परं = परस्पर
सग्गतुल्लो = स्वर्ग के तुल्य
नराणं = मनुष्यों के लिए
साउभोयणरया = स्वादिष्ट भोजन में आसक्त
लिहिआ = लिखा/लिख दिया

कयावि = कदापि, कभी
वोहियव्वा = समझाना चाहिए
सिलोगपायस्स = श्लोक के चरण का
हिट्ठंमि = नीचे
पायत्तिगं = तीन पाद, चरण
छव्वा = अथवा छह
दहिघय = दधि-घृत
गुडलुद्धा = गुड़ के लोभी
मासमेगं = एक मास तक
खरतुल्लो = गदहे के समान
माणवो = मानव, मनुष्य
माणहीणो = मान से रहित
नेच्छंति = नहीं चाहते हैं
नीसारिअव्वा = निकालना चाहिए
खरसमाणा = गदहे के समान
माहवो = माधव नाम का दामाद
निक्कासणिज्जा = निकाल देना चाहिए
अज्जयणाओ = आज से ही
वज्जकुडो = वज्रकूट, बाजरा
थूलो = स्थूल, मोटी
घयजुत्तो = घृतयुक्त
देइ = देती है
दायव्वो = देना चाहिए
वसणं = रहना
आणा = आज्ञा
पच्चूसे = सवेरे
अणइक्कमणीअ = अनुल्लंघनीय
रोट्टगं = रोट, बड़ी रोटी
मुल्लं = मूल्य, कीमत
अणुण्णं = आज्ञा, अनुज्ञा
सिया = है, हो
पुणरवि = पुनरपि
गणिऊण = गिनकर, मानकर
तिलतेल्लेण = तिल के तेल से
कल्ले = कल
विउसी = विदुषी
ठास्सामो = रहेंगे
तुरंगमपिट्ठच्छाइ = घोड़े की पीठ पर डाला जानेवाला
आवरणवत्थं = आवरण-वस्त्र
विजयरामेण = विजयराम ने
तइअचउत्थ = तीसरा एवं चौथा
जामायरा = जामाता
लद्धुवाओ = उपाय खोजकर
सयणाय = सोने के लिए
कयाइ = कभी, कदाचित्
दुतिपहरे = दो-तीन प्रहर
दोण्णि = दोनों
विविहकीलाओ = विविध क्रीड़ाएँ
कुणंता = करते हुए
नट्टाइं = नृत्य आदि
पासंता = देखते हुए

गिहद्दारे = घर के दरवाजे पर
उच्चसरेण = उच्च स्वर से
अक्कोसंति = चिल्लाते हुए
तुरंगसालाए = घुड़साल में, अश्वशाला में
आत्थरणाभावे = विस्तर के अभाव में
सिक्खं = सीख, शिक्षा
अम्हकेरा = हमारा
उयरग्गिदीवणेण = जठराग्नि के उद्दीपन से
भूसज्जाए = भूमि-रूप विछावन पर
वुत्तंतो = वृत्तान्त
अईव = अतीव
तुट्ठो = सन्तुष्ट
सावमाणं = अपमानपूर्वक
उइअं = उचित
भूलोट्टणं = भूमि में लोटना
केसवो = केशव
असच्चवाइ = असत्यवादी
मारइस्सं = मारूँगा
उवाणहेण = उपानह से, जूते से
ताडिंति = मारते हैं
उवएसो = उपदेश
चउक्कस्स = चारों का
परान्नं = पराया अन्न
वच्छ ! = वत्स !
पाव ! = पापी !
अवसरसु = हट, हट
दूरीभव = दूर हट,
अकहिऊण = विना कहे ही
जाव = जवतक, तक
संवसे = रहना चाहिए

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालें।

२. लेखक ने स्वाभिमानी दामादों को ससुराल में अधिक-से-अधिक कितने दिनों तक रहने की सलाह दी है ?

३. चारों दामादों में आपकी दृष्टि में कौन-कौन से दामाद प्रशंसनीय हैं और क्यों ?

४. पुरोहित ने अपने दामादों के प्रति जो व्यवहार किया, आप उससे सहमत हैं अथवा असहमत ? अपने विचार व्यक्त करें।

५. "सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की विषमता की दृष्टि से यह कथा यथार्थवादी एवं श्रेष्ठ है।" इस कथन की समीक्षा करें।

६. **निम्नांकित प्राकृत-शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें :**

पुरोहिओ, नियं, आसी, सएव, एगो, अत्थि, पुत्तो, निस्सारिओ, भोयणलुद्धा, गमिस्सं, सुत्ती, मित्ता, लिहिआ, रत्तीए, खज्जरसलुद्धा, नट्ठाइं, खरसमाणा, सयणत्थे, मोणेण, धक्कामुक्केण, निक्कासिआ।

●

# ६. सिप्पिपुत्तस्स कहा
## ( शिल्पी-पुत्र की कथा )

**पाठसंक्षेप :** पिता द्वारा सिखाया गया पुत्र अपनी कलाओं में पारंगत हो जाता, यदि उसमें शीघ्र ही आत्मख्याति प्राप्त करने की प्रवृत्ति जागरित न होती। एतद्विपयक एक शिल्पकार की कथा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है।

अवन्ती नाम की नगरी में इन्द्रदत्त नाम का एक श्रेष्ठ शिल्पकार निवास करता था। वह अपनी शिल्पकला के कारण समस्त संसार में प्रसिद्ध हो गया था। उसके समान कोई दूसरा शिल्पकार न था। उसके एक पुत्र था, जिसका नाम सोमदत्त था। अपने पिता के समीप शिल्पकला को सीखता हुआ वह क्रमशः पिता से भी अधिक शिल्पकला में कुशल हो गया। किन्तु, सोमदत्त जिन-जिन प्रतिमाओं का निर्माण करता, उनमें कोई-न-कोई भूल उसका पिता अवश्य दिखा देता। पिता उसकी कभी प्रशंसा नहीं करता था, फिर भी वह सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्मातिसूक्ष्म शिल्पक्रिया करके अपने पिता को दिखाता। फिर भी, उसका पिता उसमें भी कोई-न-कोई भूल अवश्य दिखा देता और कहता : "तुमने सुन्दरतम शिल्पक्रिया नहीं की है।" इस प्रकार, वह कभी उसकी प्रशंसा नहीं करता था। पिता द्वारा प्रशंसा न मिलने पर उसने इस प्रकार विचार किया :

'मेरे पिता मेरी कला की प्रशंसा कभी नहीं करते, अतः अव मैं कोई ऐसा उपाय करूँ, जिससे वह मेरी कला की प्रशंसा करने लगें।' अन्य किसी एक दिन उसका पिता किसी कार्यवश दूसरे गाँव में गया। उसी समय उस सोमदत्त ने गणेशजी की एक सुन्दरतम प्रतिमा का निर्माण कर, उसके निचले भाग में छोटे-छोटे अक्षरों में अपना नाम अंकित कर उस मूर्त्ति को अपने मित्र द्वारा भूमि के नीचे गड़वा दिया। कालान्तर में दूसरे गाँव से उसका पिता भी वापस आ गया। अवसर पाकर उस सोमदत्त के मित्र ने लोगों के आगे जाकर इस प्रकार कहा : "आज मुझे एक स्वप्न आया है कि अमुक भूमि में एक प्रभावशालिनी गणेशजी की प्रतिमा गड़ी हुई है।" लोगों ने उसी समय जाकर उस पृथ्वी को खोदा, जिससे गणेशजी की एक सुन्दरतम अनुपम मूर्त्ति निकली। उसका दर्शन करने के लिए अनेक लोग वहाँ आये। उन्होंने उस मूर्त्ति की शिल्पकला की वड़ी प्रशंसा की। उसी समय वह इन्द्रदत्त शिल्पकार भी अपने पुत्र सोमदत्त के साथ वहाँ पहुँचा। गणेश की उस प्रतिमा को देखकर शिल्पकार ने अपने पुत्र से कहा : "हे पुत्र ! शिल्पकला इसे ही कहते हैं। कितनी सुन्दर प्रतिमा वनाई गई है ! इसका वनानेवाला निश्चय ही धन्यतम एवं प्रशंसा के योग्य है। देखो, इसमें कहीं भूल अथवा कमी दिखाई देती है ? यदि तुम इसी प्रकार की प्रतिमा का निर्माण करोगे, तभी मैं तुम्हारी शिल्पकला की प्रशंसा करूँगा, अन्यथा नहीं।"

यह सुनकर पुत्र ने उत्तर दिया : "हे पिताजी ! गणेशजी की यह प्रतिमा मैंने ही वनाई है। इस प्रतिमा के निचले भाग में सूक्ष्म अक्षरों में मेरा नाम भी लिखा हुआ है।" उसका पिता लिखे हुए नाम को पढ़कर खिजलाये हुए मन से उससे वोला : "हे पुत्र ! अव आज से तुम इस प्रकार की शिल्पकला से युक्त सुन्दरतम प्रतिमा का निर्माण कभी नहीं कर सकोगे; क्योंकि मैं तुम्हारी शिल्पकला में जव-जव भूलें दिखाता था, तभी-तभी तुम भी सुन्दरतम शिल्पकला के कार्य करने में तल्लीन होकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ शिल्पक्रिया करते रहते थे। इसी कारण तुम्हारी शिल्पकला भी वढ़ती जा

रही थी और अब 'मेरे समान दूसरा कोई नहीं है' इस प्रकार के विचार से उत्साह मन्द हो जाने पर तुम श्रेष्ठ और सुन्दर शिल्पक्रिया नहीं कर सकोगे।" सोमदत्त अपने पिता के इन रहस्यपूर्ण वचनों को सुनकर उनके चरणों में गिर पड़ा और उनसे छलपूर्वक अपनी प्रशंसा कराने के अपराध के लिए क्षमा-याचना करने लगा। पिता ने उसे क्षमा भी कर दिया, किन्तु वह सोमदत्त उसके बाद से फिर उस प्रकार की सुन्दरतम शिल्पक्रिया करने में सदा-सदा के लिए असमर्थ हो गया।

**उपदेश :** शिल्पी-पुत्र का दृष्टान्त देखकर और अपनी आत्मा के गुणों को समझकर तथा पूज्य पुरुषों की वाणी को सुनकर उनके प्रतिकूल आचरण कभी नहीं करना चाहिए।

## कठिन शब्दों के अर्थ

अवंतीए = अवन्ती में
सिप्पिवरो = श्रेष्ठ शिल्पकार
सिप्पकलाहिं = शिल्पकला द्वारा
पसिद्धो = प्रसिद्ध
इमस्स = इसके
अन्नो = अन्य
नत्थि = न था
पुत्तो = पुत्र
सगासंमि = समीप में
सिक्खंतो = शिक्षा लेते हुए, सीखते हुए
अईव = अत्यन्त, अतीव
पुरीए = नगरी में
अहेसि = था, रहता था
सव्वंमि = सभी में
जयम्मि = संसार में
होत्था = हो गया
सरिच्छो = समान
को वि = कोई भी
एयस्स = इसका
पिउस्स = पिता के
सिप्पकलं = शिल्पकला को
कमेण = क्रम से
पिअराओ = पिता से
जाओ = हो गया
पडिमाओ = प्रतिमाएँ, मूर्त्तियाँ
तासु = उनमें
कंपि = कोई भी
दंसेइ = दिखाता
सिलाहं = प्रशंसा, श्लाघा
तओ = उसके बाद से

सुहुमदिट्ठीए = सूक्ष्म दृष्टि से
सिप्पकिरियं = शिल्पक्रिया, शिल्पकर्म
खलनं = त्रुटि, गलती, चूक
सोहणयरं = सुन्दरतर
कयाइ = कभी
पसंसेइ = प्रशंसा करता था
पिउम्मि = पिता के
चिंतेइ = विचार किया
कलं = कला की
पसंसेज्जा = प्रशंसा करें
उवाय = उपाय
जेण = जिससे
एगया = एक समय, एक दिन
कज्जपसंगेण = कार्यवश
तया = तब, तभी
सुंदरयमं = सुन्दरतम
पडिमाए = प्रतिमा के
गूढं = गुप्त; रहस्यपूर्ण
मुत्तिं = मूर्त्ति को, प्रतिमा को
निम्मवेइ = बनाता
पिआ = पिता
भुल्लं = भूल
कयावि = कभी
कुणेइ = करता था
स = वह
सुहुम = सूक्ष्म
कुणेऊण = करके

पियरं = पिता को
तुमए = तुमने
कयं = की है
तं = उसकी
अपसंसमाणे = प्रशंसा न किये जाने के कारण
मज्झ = मेरी
कह = क्यों
एआरिसं = इस प्रकार
पसंसेज्ज—प्रशंसा करें
करेमि = करूँ
पियरा = पिता
गामंतरे = दूसरे गाँव में
सिरीगणेसस्स = श्रीगणेशजी की
काऊण = बनाकर
हिट्ठंमि = नीचे, निचले भाग में
नियनामंकियचिन्हं करिऊण = अपना नाम लिखकर
नियमित्तद्दारेण = अपने मित्र द्वारा
निक्खेवो कारेइ = छिपवा दिया, गड़वा दिया
समागओ = आ गया, लौट आया
अज्ज = आज
अमुगाए = अमुक
पहावसालिणी = प्रभावशालिनी
पुढवी = पृथ्वी
अणुवमा = अनुपम

तद्दंसणत्थं = उसके दर्शनों के लिए
सपुत्तो = पुत्र के साथ
एसच्चिय = ऐसी ही
केरिसं = कैसी
इमाए = इसका
धण्णयमो = धन्यतम
सलाहणिज्जो = प्रशंसनीय, प्रशंसा का पात्र
निम्मवेज्ज = बना सको
मए = मैंने
गुत्तं = गुप्तरूप में, सूक्ष्मरूप में
पिआवि = पिता भी
वाइऊण = बाँचकर, पढ़कर
अज्जयणाओ = आज से
तुं = तुम
कयावि = कभी
भूमीए = भूमि के
अंतो = भीतर
कालंतरे = कुछ समय के बाद
समागओ = आया, लौटा
जणाणमग्गओ = लोगों के आगे
सुमणो = स्वप्न
भूमीए = भूमि में
लोगेहिं = लोगों द्वारा
खणिआ = खोदी गई
निग्गया = निकली
सिप्पकलं = शिल्पकला
पसंसिरे = प्रशंसा करने लगे
दट्ठूण = देखकर
कहिज्जइ = कही जाती है
निम्मविआ = निर्मित की है
निम्मावगो = बनानेवाला, निर्मापक, बनवानेवाला
पासेसु = देखो
भुल्लं, खुण्णं = भूल, कमी, गलती
नन्नहा = अन्यथा नहीं
मम कया = मैंने बनाई है
लिहिअमत्थि = लिखा हुआ है
लिहिअनामं = लिखे हुए नाम को
खिन्नहिअओ = खिन्नहृदय, दुःखी हृदयवाला
एरिसं = ऐसी
करिस्ससि = करोगे, कर सकोगे
जओ = क्योंकि
सोहणयरकज्जकरणतल्लिच्छो = सुन्दरतर (शोभनतर) कार्य करने में तल्लीन
वड्ढंती हुवीअ = बढ़ती रहती थी
नन्नो = दूसरा नहीं
मंदूसाहेण = उत्साह मंद हो जाने के कारण
सरहस्सं = रहस्यपूर्ण
पाएसु = पैरों में, चरणों में

पिउत्तो = पिता से
खामेइ = क्षमा कराता है
तओ आरब्भ = तब से
तारिसि = वैसी
असमत्थो = असमर्थ
उवएसो = उपदेश
दंसंतो = दिखाता
सण्हं-सण्हं = धीरे-धीरे, शनैः-शनैः
कुणंतो = करते हुए
आसि = रहते थे
अहुणा = इस समय
इह = इस प्रकार
एआरिसी = इस प्रकार की
संभविहिइ = सम्भव होगी
पिउवयणं = पिता के वचन को
पडिऊण = गिरकर
पसंसाकरावणरूवनिआवराहं = प्रशंसा कराने के अपने अपराध को
काउं = करने में
जाओ = हो गया

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. शिल्पी-पुत्र की कथा के अध्ययन से मिलनेवाली शिक्षाओं पर सामीचीन प्रकाश डालें।
२. प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में प्रस्तुत करें।
३. प्रस्तुत पाठ के आधार पर सिद्ध करें कि 'सन्तोष प्रगति का बाधक है।'
४. प्रस्तुत पाठ के आधार पर बतायें कि पिता की विचारधारा अपने पुत्र के प्रति उपयुक्त थी अथवा अनुपयुक्त ?
५. पुत्र ने पिता के व्यवहार से रुष्ट होकर जो षड्यन्त्र किया, उससे आप कहाँतक सहमत हैं ? अपने विचार प्रस्तुत करें।
६. **निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें :**

सव्वम्मि, काऊण, पसिद्धो, हिट्ठंमि, सरिच्छो, मुत्ति, सगासम्मि, सुमिणो, पिआ, पुढवी, सिलाहं, निग्गया, कुणेऊण, पासेसु, उवायं, नन्नहा, सिरिगणेसस्स, गुत्तं।

# ७. अमंगलियपुरिसस्स कहा
## ( अमांगलिक पुरुष की कथा )

**सारांश** : इस संसार में कोई भी व्यक्ति अमंगलमुख नहीं है। अमंगलमुख कहकर राजा ने उसके वध का आदेश दिया, किन्तु वह राजा स्वयं ही अमंगलमुख वन गया।

किसी नगर में एक अमांगलिक मूर्ख व्यक्ति रहता था। वह इतना असगुनिया था कि सवेरे-सवेरे जो कोई भी उसका मुख देख लेता था, उसे भोजन भी नहीं मिलता था। नगर के लोग भी सवेरे-सवेरे उठकर उसका मुख नहीं देखते थे। उस नगर के राजा ने भी उस अमांगलिक पुरुष के विषय में वात सुनी, तो उसने परीक्षा के लिए किसी एक दिन सवेरे-सवेरे उसे वुलवाया और उसका मुख देख लिया। जव राजा भोजन के लिए वैठा और उसने पहला ही कौर मुख में रखा, तभी पूरे नगर में अकस्मात् ही शत्रु के आक्रमण के भय से कुहराम मच गया। उसी समय राजा भोजन छोड़कर सहसा उठ खड़ा हुआ और सेना-सहित नगर से वाहर निकल गया। किन्तु, भय का कोई कारण न देखकर वह पुनः वापस चला आया और इस प्रकार विचार करने लगा : "आज उस अमांगलिकमुख व्यक्ति का सच्चा रूप मैंने स्पष्ट ही देख लिया है, अतः इसे मार डालना चाहिए।" इस प्रकार विचार करके उसने उस अमांगलिक व्यक्ति को वुलवाकर उसका वध करने के लिए चण्डाल को सौंप दिया। जव वह अमांगलिकमुख व्यक्ति रोता-कलपता और अपने भाग्य की निन्दा करता हुआ चण्डाल के साथ-साथ जा रहा था, तभी एक कारुणिक एवं वुद्धिमान् व्यक्ति वहाँ आया और वध के लिए ले जाते हुए उस व्यक्ति को उसने देखा। तव उसने उसके कारण को जानकर, उसकी रक्षा के लिए उस व्यक्ति के कान में कुछ कहकर, कोई उपाय वता दिया। वह अमांगलिकमुख व्यक्ति हर्षित होता हुआ जव वध के खम्भे पर खड़ा किया गया, तभी चण्डाल ने उससे पूछा : "जीवन को छोड़कर यदि तुम्हारी अन्य कोई इच्छा हो, तो उसे माँग सकते हो।" यह सुनकर उस अमांगलिकमुख ने कहा : "मुझे राजा के

दर्शन करने की इच्छा है।" उसी समय उसे राजा के समीप लाया गया। राजा ने उससे पूछा : "तुम्हारा यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?" यह सुनकर उसने कहा : "हे राजन् ! सवेरे-सवेरे मेरा मुख देखने से तो आपको केवल भोजन नहीं मिल सका, किन्तु आपका मुँह देखने से तो मुझे मृत्यु का दण्ड मिल गया है। इसे सुनकर नगर के लोग क्या कहेंगे ? मेरे मुख-दर्शन की अपेक्षा श्रीमान् के मुख-दर्शन का कैसा फल मिल रहा है ? नागरिक लोग सवेरे-सवेरे आपके मुख का दर्शन कैसे करेंगे ?" इस प्रकार, उस अमांगलिकमुख व्यक्ति की तर्कसंगत बातों को सुनकर राजा बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उसने उसके वध के आदेश को रद्द कर उसे पारितोषिक देकर सन्तुष्ट किया।

**उपदेश** : इस प्रकार एक बुद्धिमान् व्यक्ति ने अमांगलिकमुख व्यक्ति की रक्षा की। उसे सुनकर हे सज्जनो, आप भी बुद्धि के अनुसार अपने कार्य का साधक बनें।

## कठिन शब्दों के अर्थ

एगम्मि नयरे = एक नगर में
अमंगलिओ = अमांगलिक, अमंगल करनेवाला
मुद्धो = मूर्ख, मुग्ध
आसि = रहता था
जो = जो
पभायंमि = प्रभातकाल में
लहेज्जा = प्राप्त करता
पच्चूसे = प्रातःकाल में
पिक्खंति = देखते
अमंगलियपुरिसस्स = अमांगलिक पुरुष का
वट्टा = बात, वार्त्ता
परिक्खटथं = परीक्षा के लिए
एगया = एक समय
सो = वह
दिट्ठं = देखा
भोयणटथं = भोजन के लिए
कवलं = ग्रास, कौर
एगो = एक
पुरिसो = पुरुष
अत्थि = था, है
कोवि = कोई भी
पासेइ = देखता
पउरा = नगर के निवासी

कयावि = कभी
नरवइणा = राजा ने
सुणिआ = सुनी
नरिंदेण = राजा ने
पभायकाले = प्रातःकाल में
आहूओ = बुलाया
जया = जब
उवविसइ = बैठा
पक्खिवइ = रखा, खाया
अहिलंमि = समस्त
परचक्कभएण = शत्रु के आक्रमण के भय से
जाओ = उत्पन्न हो गया, मच गया
नरवई = राजा
सहसा = शीघ्र ही
मुहे = मुख में
तया = तभी
अकम्हा = अकस्मात्
हलवोलो = शोरगुल, कोलाहल
तया = तभी, तब
चिच्चा = छोड़ करके
उत्थाय = उठकर
नयराओ = नगर से
भयकारणमदट्ठूण = भय का कारण न देखकर
पुणो = फिर
आगओ समाणो = आने पर

अस्स = इसका
सरूवं = स्वरूप, आकार, चेहरा
दिट्ठं = देखा
हंतव्वो = मारना चाहिए
वहत्थं = वध के लिए
नेइज्जमाणं = ले जाते हुए
णच्चा = जानकर
कण्णे = कान में
कहिऊण = कहकर
दंसेइ = कह दिया, बता दिया
जया = जब
ठविओ = खड़ा किया गया
जीवणं = जीवन, प्राण
कावि = कोई भी
ससेण्णो = सेना के साथ
वाहिं = बाहर
पच्छा = पश्चात्
चिंतेइ = सोचने लगा
अमंगलिअस्स = अमांगलिक के
पच्चक्खं = प्रत्यक्ष
तओ = इसलिए
वोल्लाविऊण = बुलवाकर
चंडालस्स = चण्डाल को
अप्पेइ = सौंप दिया
रुयंतो = रोता हुआ
सकम्मं = अपने भाग्य को
निंदंतो = निन्दा करता/कोसता हुआ

सह = साथ
गच्छंतो अत्थि = जा रहा था
कारुणिओ = दयालु
वुद्धिणिहाणो = वुद्धिमान्
वहाइ = फाँसी के लिए
दट्ठूणं = देखकर
रक्खणाय = रक्षा के लिए
किंपि = कुछ भी
उवायं = उपाय
हरिसंतो = हर्षित होता हुआ
वहत्थंभे = फाँसी के तख्ते पर
पुच्छइ = पूछा
विणा = छोड़कर, विना
सिया = हो
मग्गियव्वं = माँगो
नरिंदमुहदंसणेच्छा = राजा के मुख को देखने की इच्छा
आगमणपयोअणं = आने का प्रयोजन
कहेइ = उत्तर दिया
मुहपेक्खणेण = मुख देखने से
भविस्सइ = होगा
कहिस्संति = कहेंगे
केरिसफलयं = कैसा फल
नायरा = नागरिक
पासिहिरे = देखेंगे
रक्खणं = रक्षा

धीमया = वुद्धिमान् व्यक्ति द्वारा
तुम्हे = तुम भी
होह = वनो
कज्जसाहगा = कार्यों के साधक
मज्झ = मेरी
आणीओ = लाया
किमेत्थ = क्या यहाँ
पओयणं = प्रयोजन
तुम्हाणं = तुम्हारे
वहो = फाँसी, वध
किं = क्या
सिरिमंताणं = श्रीमान् का
संजाओ = हुआ
कहं = कैसे
वयणजुत्तीए = वचनयुक्ति से, कुशल सूझ-वूझ से
वहाएसं = फाँसी के आदेश को
निसेहिऊण = निषेध करके, रुकवाकर
पारितोसिअं = पारितोषिक, इनाम
दच्चा = देकर
संतोसीअ = सन्तुष्ट किया
अमंगलमुहस्स = अमंगल मुखवाले की
कयं = किया
सोच्चा = सुनकर
तहा = उसी प्रकार
मईए = मति से, बुद्धि के अनुसार

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. 'अमांगलिक' शब्द से आप क्या समझते हैं? क्या सृष्टि में अमांगलिक पुरुष उत्पन्न हो सकते हैं? अपने विचार प्रस्तुत करें।

२. प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में प्रस्तुत करें।

३. क्या राजा ने अमांगलिक व्यक्ति को मृत्युदण्ड देकर न्यायसंगत कार्य किया? राजा को उसका क्या फल मिला? अपने शब्दों में लिखें।

४ अमांगलिक व्यक्ति की कारुणिक व्यक्ति ने किस प्रकार सहायता की?

५. निम्नांकित शब्दों का हिन्दी-रूप प्रस्तुत करें :

मुद्धो, पओयणं, एरिसो, मुहपेक्खणेण, पच्चूसे, वहो, वट्टा, भविस्सइ, अहिलंमि, तया, पच्चक्खं, पउरा, वहत्थं, नायरा, वहत्थंभे, दच्चा।

६. व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ लिखें :

नयरे, जया, नायरा, दच्चा।

●

## ८. गेहेसूरा
## ( गृहशूर )

**पाठसंक्षेप** : संसार में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो वीरता की केवल डींग हाँकते हैं। लेकिन, समय पड़ने पर उनकी वीरता काफूर हो जाती है। प्रस्तुत कहानी 'गेहेसूरा' इसी प्रकार की है। इसका नायक स्वर्णकार घर में वीरता की लम्बी-लम्बी बातें करता है। वह अपनी पत्नी से कहता है कि मेरा सामना सैकड़ों योद्धा भी नहीं कर सकते।

कहानी का आरम्भ करते हुए कहानीकार ने बताया है कि एक नगर में एक सुनार रहता था। उसकी दूकान बाजार के मुख्य राजपथ पर थी। वह प्रति दिन स्वर्णाभूषणों से भरी हुई अपनी सन्दूक (मंजूषा) घर लाया करता था। उसकी पत्नी ने उसे कई दिन समझाया कि "मध्यरात्रि के समय स्वर्णाभूषणों से भरी सन्दूक लेकर आना निरापद नहीं। यदि रास्ते में चोर और

डाकू मिल जायेंगे, तो तुम कुछ नहीं कर सकोगे।" सुनार ने उत्तर दिया : "तुम्हें मेरे पौरुष का ज्ञान नहीं है। मैं अकेला ही सैकड़ों व्यक्तियों को चकनाचूर कर सकता हूँ। सामान्य व्यक्तियों की तो वात ही क्या, वड़े-वड़े शूरवीर भी मेरा मुकावला नहीं कर सकते।"

पति की इन वातों को सुनकर पत्नी चुप हो गई। पर, उसके मन में यह आशंका वनी रही कि चोरों के मिल जाने पर मेरा यह पति कुछ भी नहीं कर सकेगा। अतः, वह उसकी परीक्षा के लिए अपने पड़ोस की एक क्षत्रियाणी से मर्दाने कपड़े और तलवार आदि माँग कर ले आई। अगले दिन वह स्वयं ही इन वस्त्रों को धारण कर, हाथ में नंगी तलवार लेकर रात्रि की नीरवता में जिस मार्ग से उसका पति लौटता था, उसी मार्ग के एक वृक्ष के पीछे छिपकर खड़ी हो गई। जव सुनार स्वर्ण की सन्दूकची लिये हुए उसके पास आया, तव उसने संकेत द्वारा ही स्वर्णभरी सन्दूकची ले ली। पश्चात् तलवार की नोंक उसकी छाती में लगाकर 'हूँ-हूँ' के संकेत से ही उसके सारे वस्त्र उतरवा लिये। अव वह छोटे वच्चे के समान नग्न हो गया।

पत्नी शीघ्रतापूर्वक अपने घर आई और वस्त्र वदलकर निश्चिन्त हो दरवाजा वन्द कर भीतर जाकर लेट गई। इधर, वह सुनार अपने को किसी प्रकार छिपाता हुआ, दूकानों के पीछे-पीछे जाने लगा। कुँजड़े ने खीरों की टोकरी सँभालते हुए उसमें से एक सड़ा खीरा वाहर फेंका, जो कि सुनार की पीठ में जाकर लगा। सुनार ने समझा कि मेरी पीठ में गोली लगी है और उसके घाव से खून भी निकल रहा है। खीरे के वीजों को देखकर उसने समझा कि घाव में कीड़े भी पड़ गये हैं। वह शीघ्रतापूर्वक दूसरों की दृष्टि से अपने को वचाता हुआ घर की ओर भागा। घर के दरवाजे पर पहुँचकर उसने देखा कि घर वन्द है। भीतर से अर्गला चढ़ा दी गई है। उसने जोर-जोर से किवाड़ पीटे और चिल्ला-चिल्लाकर अपनी पत्नी को वुलाया। पत्नी ने किवाड़ खोलकर उसे भीतर किया और पूछा कि "यह कैसी तुम्हारी दशा हो रही है? गहनों की सन्दूक कहाँ है?" सुनार ने उत्तर दिया : "भीतर चलो, मैं

अन्दर के कमरे में पहुँचने पर ही तुम्हें सारा समाचार बताऊँगा। क़िवाड़ में ताला भी लगा दो।" सुनार बड़ा आतंकित था और उसका शरीर काँप रहा था। वह कहने लगा : "क्या करूँ, सौ-डेढ़ सौ चोर मेरे सामने आ गये थे। दस-पाँच होते, तो मैं उनका मुकाबला स्वयं करता, पर इतने अधिक लोगों का मैं सामना न कर सका। उन्होंने मेरी सन्दूकची छीन ली और मेरे सारे कपड़े भी उतरवा लिये। इतना ही नहीं, मेरी पीठ में बन्दूक की गोली लगी है और उससे बने घाव में कीड़े भी पड़ गये हैं। उससे खून निकल रहा है।" पत्नी ने देखकर कहा कि "अरे, यह घाव नहीं है, सड़े हुए खीरे के बीज और रस लगे हुए हैं और तुमने रस और इन बीजों को ही खून और कीड़ा समझ लिया है।"

पत्नी ने उसे स्नान के लिए जल दिया। स्नान कर उसने पहनने के लिए वस्त्र माँगे। पत्नी ने उसके वे ही कपड़े दिये, जो उसने उससे उतरवाये थे और उसकी वीरता की खिल्ली उड़ाते हुए सारे रहस्य का उद्‌घाटन कर दिया। इसपर बेशर्मी से वह सुनार बोला : "अरे, मैंने तो तुम्हें उसी समय पहचान लिया था। इसी से तो आसानी से सारी चीजें दे दी थीं। मैंने सोचा कि पत्नी के साथ लड़ना उचित नहीं।" तब स्त्री ने हाथ जोड़कर कहा : "आपकी वीरता तो जगत्प्रसिद्ध है, पर कृपया कल से रात्रि में आभूषणों की मंजूषा घर न लाया करें।

चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि से यह कहानी बहुत ही मार्मिक है। कायर की इससे अच्छा चरित्र और क्या हो सकता है? कहानी में हास्य-व्यंग्य के साथ कौतूहल-तत्त्व का बहुत ही सुन्दर संयोजन किया गया है। लेखक ने अपने ही आँगन में शूर बननेवाले कायरों के चरित्र पर चुभता हुआ व्यंग्य किया है। वार्त्तालाप अल्प मात्रा में होते हुए भी वह स्वाभाविक बन पड़ा है और कहानी को गतिशील बनाने में सक्षम है।

कहानी-कला की दृष्टि से भी इस कहानी को एक सफल मार्मिक कहानी कहा जा सकता है।

**समीक्षा :** 'गेहेसूरा' कथा में लोकमान्यताओं और रूढ़ियों का सुन्दर

चित्रण किया गया है। इसमें यों तो एक कायर व्यक्ति का चरित्र ही अंकित है, पर वस्तुतः इसमें ऐसे लोगों की भी मनोवृत्ति पर समुचित प्रकाश डाला गया है, जो परिश्रम तो नहीं करते, पर लम्बी-चौड़ी बातें अवश्य करते हैं। इस कथा में निम्नलिखित गुण और तत्त्व पाये जाते हैं :

१. कौतूहल का समावेश,
२. मनोरंजन का सुनियोजन,
३. कथा की आरोह-अवरोहजन्य गतियों का सुनियोजन,
४. चरित्र का विश्लेषण;
५. संवाद-तत्त्व का समावेश;
६. शिक्षा अथवा परिणाम की घोषणा और
७. कथारस की सम्प्राप्ति।

प्रस्तुत कहानी में जितनी भी घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सभी किसी एक लक्ष्य से बँधी हुई हैं। घटनाओं का क्रम भी सुनियोजित है। एक के बाद दूसरी घटना स्वाभाविक रूप से घटित होती जाती है। 'गेहेसूरा' पाठ के नायक स्वर्णकार को उसकी पत्नी निर्जन स्थान में सोने-चाँदी की पेटी लेकर चलने से मना करती है। पर, वह कायर व्यक्ति अपनी झूठी डींग हाँककर पत्नी के समक्ष अपने को शूरवीर सिद्ध करना चाहता है। उसकी परीक्षा के लिए उसकी पत्नी भी दृढ़ संकल्प करती है और एक दिन उसका कायरपन पकड़ा ही जाता है। कथाकार ने इन दोनों घटनाओं का सम्बन्ध बड़े ही चमत्कारपूर्ण ढंग से जोड़ा है, जिससे कथावस्तु में कौतूहल और मनोरंजकता, ये दोनों ही गुण अक्षुण्ण रूप से उपलब्ध हो जाते हैं। कथा में एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आगे कौन-सी घटना घटित हुई? यदि पाठक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न न हो, तो कथा प्रायः नीरस हो जाती है और पाठकों को रुचिकर नहीं प्रतीत होती।

प्रस्तुत कथा में जिज्ञासा-गुण सर्वाधिक व्याप्त है। जब कायर व्यक्ति की स्त्री नंगी तलवार लेकर अपने पति की परीक्षा करती है, तब पाठक भी

यह जानना चाहता है कि गृहशूर व्यक्ति अपनी कथनी और करनी, दोनों में कहाँतक सफलता प्राप्त करता हैं। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत कथा में एक ऐसी जिज्ञासा छिपी हुई है, जिसके कारण पाठक का मन कथा में रम जाता है।

जिज्ञासा के साथ मनोरंजन भी इस कथा में निहित है। घर में नंग-धड़ंग लौटने पर गृहशूर व्यक्ति जव अपने उन्हीं वस्त्रों को पुनः प्राप्त करता है, तव वह सहज में ही यह जान लेता है कि प्रस्तुत घटना मेरी पत्नी द्वारा ही सम्पादित हुई है। अतः, वह पुनः डींग हाँकने लगता है और अपनी झूठी वीरता प्रकट करने के लिए पत्नी से कहता है कि 'मैंने स्त्री समझकर ही तुम्हारा मुकावला नहीं किया, अन्यथा मेरे समक्ष सैकड़ों योद्धाओं को भी ठहरने की शक्ति नहीं।' इस सन्दर्भ को पढ़कर कौन ऐसा पाठक होगा, जो उस कायर के चरित्र पर एक बार हँसेगा नहीं? कहाँ तो इतना भय कि सड़े हुए खीरे के वीजों को घावों के कीड़े समझना और कहाँ तथाकथित लम्वी-चौड़ी डींग हाँकना? चरित्र के इस विरोधाभास को लेखक ने वड़े ही मनोरंजक ढंग से उपस्थित किया है। अतः, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस कहानी में जिज्ञासा, कौतूहल और मनोरंजन इन तीनों गुणों की त्रिवेणी प्रवाहित है।

चरित्र-विकास की दृष्टि से भी यह कथा महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने इस छोटी-सी कहानी में पति-पत्नी के संवाद द्वारा एक कायर व्यक्ति के चरित्र को स्पष्ट किया है। प्रायः यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति कोरी वातें करता है, वह काम नहीं कर पाता। काम करनेवाला व्यक्ति वातें नहीं वनाता। गृहशूर घर में ही लम्वी-चौड़ी वातें करनेवाला व्यक्ति है और जव वीरता-प्रदर्शन का अवसर आता है, तव वह दुम दवाकर भाग खड़ा होता है। इस प्रकार, कथातत्त्वों की दृष्टि से यह कहानी पूर्णतया सफल है।

**शिक्षा :** १. प्रस्तुत कहानी से मिलनेवाली शिक्षा इस प्रकार है। वीरता ही जीवन और कायरपन ही मरण है। जो कायर व्यक्ति अपने कायरपन को छिपाने के लिए व्यर्थ की वातें करता है, वह कभी जीवन में सफल नहीं होता। जीवन की सफलता का मूल सिद्धान्त कथनी और करनी

का एक होना है। जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, ऐसे व्यक्ति मनुष्य होते हुए भी पशुतुल्य हैं।

२. इस कथा से सबसे बड़ी शिक्षा यह मिलती है कि मनुष्य को वीरता, साहस और सहिष्णुता अपनानी चाहिए। हितकारी अच्छी बात यदि अपनी पत्नी भी कहे, तो उसे स्वीकार करना चाहिए। जीवन में वे ही व्यक्ति उन्नति कर सकते हैं, जो वीरता और त्याग अपनाते हैं। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मानव बनने का होना चाहिए। मानव बनने के लिए सेवा, त्याग, वीरता एवं वचन के अनुसार ही कार्य पूरा करने जैसे गुण अपेक्षित हैं।

कहानीकार ने इस छोटी-सी कहानी में ऐसे चरित्र का चित्रण किया है, जो जीवन को निरन्तर प्रभावित करता है। क्योंकि, जो व्यक्ति कायर हैं, वे कभी उन्नति नहीं कर सकते। पुरुषार्थ करना वीर व्यक्तियों का ही कार्य है। एक कहावत प्रसिद्ध है कि वीर व्यक्ति जीवन में एक बार ही मृत्यु को प्राप्त करता है, जब कि कायर व्यक्ति प्रतिक्षण मृत्यु को प्राप्त करता रहता है। मृत्यु का अर्थ यहाँ असफलता और भय है। जो हर क्षण भयाक्रान्त रहता है, वह भय के कारण निरन्तर ही मृत्युतुल्य कष्ट प्राप्त करता रहता है। अतः, निर्भय होने की शिक्षा भी इस कथा से मिलती है।

### कठिन शब्दों के अर्थ

गेहेसूरा = गृहशूर, घर में ही शूरता और वीरता दिखानेवाला

एगंमि गामे = एक गाँव में

सुवण्णयारो = स्वर्णकार, सुनार

वसइ = रहता था

रायपहस्स = राजमार्ग के

मज्झभागे = मध्य भाग में

हट्टिगा = बाजार, दूकान

विज्जइ = थी

मज्झरत्तीए = मध्यरात्रि में

सुवण्णभरियं = सोने से भरी हुई

मंजूसं = मंजूषा, पेटी को

नियघरंमि = अपने घर में

गहिऊणं = लेकर

भज्जाए = भार्या ने, पत्नी ने

आगच्छइ = आता है,

सव्वया = सर्वदा

भत्ता = भर्त्ता, पति

मिलेज्जा = मिल जायँ

कयावि = कभी

होज्जा = हो
नियभत्तारो = अपने पति से
आगमणं = आगमन
वोल्लेसि = बोलते हो
नरसयं = सैंकड़ों व्यक्ति
कुणेज्जा = करें
काउं = करने में
कायव्वं = करना चाहिए
काहिमि = करूँगा
समीववासिणीय = समीप में रहनेवाली
वत्थभूसं = वस्त्र-आभूषण को
सिरवेढण = सिर ढकनेवाला
रायपहंमि = राजपथ में
हट्टाओ = बाजार से, दूकान से
कियंतकाले = कुछ ही समय में
हत्थेण = हाथ से
पासंतो = देखता हुआ
पुरिसवेसधारिणी = पुरुष-वेश धारण करनेवाली
निब्भच्छेइ = भर्त्सना की
मुंचेहि = छोड़ो
अकम्हा = अचानक
थरथरंतो = थरथर काँपता हुआ
सव्वपरिहिअवत्थग्गहणाय = छोड़े हुए सभी वस्त्रों को लेने के लिए
सन्नाए = संकेत से
वुत्तो = कहा
जाणासि = जानते हो
पुरओ = सामने
आगच्छेज्ज = आ जायँ
ममग्गओ = मेरे आगे
समत्था = समर्थ
सुणिऊण = सुनकर
नियघर = अपना घर
खत्तियाणीए = क्षत्रियाणी से
भत्तारो = पति
पओयणं = प्रयोजन
कडिपट्टाइसुहडवेसं = कटिपट्ट आदि योद्धा की वेशभूषा को
नाइदूरे = समीप
सोण्णारो = सुनार
भयभंतो = भयभीत
सिग्घं = शीघ्र
नीसरिऊण = निकलकर
मउणेण = मौनपूर्वक
हुँ हुँ = हे-हे, अरे-अरे
मारइस्सं = मारूँगा
रुंधिओ = रुँध गया
मारेसु = मारो
करवालग्गं = तलवार की नोंक
वच्छंमि = छाती पर

वसणाइं = वस्त्र आदि
कड्ढावेइ = निकलवा लिये
कडिपट्टयं = कटिपट्ट को
पिहिऊण = ढककर, छिपाकर
ट्ठिआ = खड़ी हो गई
अवलोएंतो = देखता हुआ
सागवावारिणो = सब्जी के व्यापारी का
पक्कचिब्भडं = पके हुए खीरे को
फासेइ = स्पर्श किया
वीआइं = वीज आदि
गाढयर = अत्यन्त
सोणिअं = खून
कीडगावि = कीड़े भी
अच्चंतभयाउलो = अत्यन्त भयाकुल
मयणस्स = मदन की
उग्घाडेहिं = खोलो, उघाड़ो
सुणंती = सुनती हुई
असुणंतीव = अनसुना करती हुई
आगच्च = आकर
तालगं = ताला
अववरगे = दालान में, वरामदे में
चोरेहिं = चोरों द्वारा
परिहिअकडिपट्टयमेत्तो = छोड़ा हुआ कटिपट्ट-मात्र
अंतो = अन्त में

कंपमाणो = काँपता हुआ
आवणवीहीए = वाजार-मार्ग से
हट्टसमीवमागओ = वाजार के समीप आ गया
पिट्ठभागे = पीठ में
लग्गिअं = लगा
चिब्भडस्स = खीरे का
फासिऊणं = छू करके
म्हि = हूँ
तम्मज्झे = उसके बीच में
समुप्पन्ना = उत्पन्न हो गये हैं
घरद्दारे = घर के द्वार पर
उच्चसरेण = उच्च स्वर से
मायरे = माता
अब्भंतरत्थिआ = भीतर ही छिपी रही
अइवक्कोसणे = बहुत चिल्लाने पर
अक्कोससि = चिल्लाते हो
गिहंमि = घर में
देसु = दे दो, लगा दो
पुच्छ = पूछो
निच्चिंतो = निश्चिन्त
लुंठिओ = लूट लिया गया
अवहरिअ = ले लिया
हे सामि ! = हे स्वामिन् !
मन्निअं = मान लिया
जइ = यदि

चेणा = चोर
जुज्झमाणो = जूझता हुआ
पिट्ठदेसे = पीठ में
पहरिओ = प्रहार किया
कीडगावि = कीड़े भी
पासित्ता = देखकर
भत्तुस्स = पति का
सच्चं = सत्य
लग्गाइं = लगे हुए
नियपइस्स = अपने पति के लिए
देहसुद्धि = देहशुद्धि को
वत्थाइं = वस्त्र आदि
तयच्चिय = तभी
मए = मेरे
सव्वावहरणमुवेक्खिअं = सर्वस्व अपहरण की उपेक्षा को
अज्जयणाओ = आज से
पुव्वं = पहले, पूर्व
आगंतव्वं = आना
महावलिट्ठो = महान् वलवान्

एए उ = और ये
तेणाहं = उसी से मैं
लुंठिऊण = लूटकर
असिणाहं = तलवार से मैं
पासेसु = देखो
उप्पन्ना = उत्पन्न
णायं = जान लिया
इमाइं = ये
जाणियं = जान लिया
समुप्पन्ना = उत्पन्न
चिब्भडेण = खीरे से
देहपक्खालणाय = देह धोने के लिए
परिहाणवत्थप्पणे = पहनने के लिए वस्त्र देते समय
नाया = जान लिया
तेणाहं = उसी से मैंने
अन्नहा = अन्यथा
सत्ती = शक्ति
नायं = जान लिया
अंगीकरेइ = स्वीकार किया

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में लिखें।
२. कथातत्त्वों की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी की समीक्षा करें।
३. प्रस्तुत पाठ से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालें।
४. प्रस्तुत पाठ की किन्हीं दो रोचक घटनाओं का अपनी भाषा में वर्णन करें।

५. निम्नांकित शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें :

गेहेसूरा, वसणाइं, विज्जइ, पिहिऊण, भत्ता, वीओ, सोहणं, पासिऊण, कुणेज्जा, दारं, परिक्खं, पुच्छ, कहिमि, थेणा, खत्तियाणीए, नाया, पयोअणं, कयावि, संवरिअ, अओ ।

६. **व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ लिखें :**

मिलेज्जा, मउणेण, आगच्छेज्ज, कुणेज्जा, सुणिऊण, विज्जइ, रायपहम्मि ।

●

# ९. गामिल्लओ सागडिओ

## ( ग्रामीण गाड़ीवाला )

**पाठसंक्षेप** : किसी ग्राम में एक ग्रामीण गृहस्थ रहता था । वह किसी एक दिन गाड़ी में धन-धान्य भरकर तथा एक तीतर को पिंजड़े में रखकर और उसे गाड़ी से बाँधकर नगर में प्रविष्ट हुआ । नगर में आते ही उसे गन्धी-पुत्र ने देखा । उन्होंने उससे पूछा : "तुम्हारे इस पिंजड़े में क्या है ।" यह सुनकर उस गाड़ीवाले ने कहा : "तीतर ।"

तदन्तर, उस गन्धी-पुत्र ने पुनः पूछा : "क्या यह गाड़ी-तीतर विक्री के लिए है ?" यह सुनकर उसने (गाड़ीवाले ने) कहा : "हाँ विक्री के लिए है ।" इसे सुनकर उस गन्धी-पुत्र ने कहा : "क्या लोगे ?" गाड़ीवाले ने उत्तर दिया : "एक कार्षापण ।"

उस गन्धी-पुत्र ने उस गाड़ीवाले को एक कार्षापण दे दिया और गाड़ी एवं तीतर दोनों लेकर चलने लगे । यह देखकर गाड़ीवाले ने पूछा : "इस गाड़ी को क्यों ले जा रहे हो ?" यह सुनकर गन्धी-पुत्र ने कहा : "हमने इसे मोल जो लिया है ?" इसके वाद उन दोनों का झगड़ा निवटाने के लिए

पंचायत बैठी। उस पंचायत में वह गाड़ीवाला हार गया। उसकी गाड़ी और तीतर दोनों ही छीन लिये गये।

अव वह गाड़ीवाला गाड़ी और तीतर छीन लिये जाने के कारण कुशल-क्षेम के निमित्त लाये गये अपने वैल को लेकर रोता-कलपता जव जा रहा था, तभी उसे एक दूसरे कुलपुत्र ने देखा और पूछा : "रो क्यों रहे हो ?" यह सुनकर उस गाड़ीवाले ने कहा : "स्वामिन् ! मैं ठग लिया गया हूँ।" तव, उस दयालु पुरुष ने कहा : "तुम उन्हीं के घर जाओ और उनसे इस-इस प्रकार से कहना।"

उस दयालु पुरुष के वचनों को सुनकर वह गाड़ीवाला उस गन्धी-पुत्र के यहाँ गया और वोला : "हे स्वामिन् ! आपने सामग्री से भरी हुई मेरी गाड़ी छीन ली है। अव इस वचे-खुचे वैल को भी ले लें। किन्तु, इसके वदले में दो पैली सत्तू दे दें, जिसको लेकर मैं घर जा सकूँ। किन्तु, वह सत्तू मैं जिस-तिसके हाथ से नहीं लूँगा। आपकी प्राणों से भी प्यारी जो पत्नी है, वह जव सभी प्रकार के वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर अपने हाथों से मुझे देगी, तभी मुझे तुष्टि होगी और मैं इस संसार में अपने को गौरवशाली भी मानूँगा।"

उसी समय गवाह वुलाये गये और उनके समक्ष गन्धी-पुत्र ने 'तथास्तु" कहकर गाड़ीवाले की शर्त्त स्वीकार कर ली। इसके वाद उस गन्धी-पुत्र की पत्नी वस्त्रालंकारों से विभूपित होकर दो पैली सत्तू लेकर गाड़ीवान को देने के लिए वाहर निकली। उसे गाड़ीवाले ने पकड़ लिया और साथ लेकर वह चलने लगा। यह देखकर उस गन्धी-पुत्र ने पूछा : 'यह तुम क्या कर रहे हो ?" इसे सुनकर उस गाड़ीवाले ने कहा : "दो पैली सत्तू ले जा रहा हूँ।"

इसके वाद उन दोनों के झगड़ने की आवाज सुनकर कुछ महाजन वहाँ एकत्र हो गये और पूछने लगे : "यह क्या, यह क्या ?" इसके वाद उन दोनों ने

जैसी-जैसी वातें हुई थीं, वैसी-वैसी सव कह सुनाई। वहाँ आये हुए लोगों ने मध्यस्थ वनकर न्याय किया और उसके अनुसार गन्धीं-पुत्र पराजित हो गया। उसने वड़ी कठिनाई से अपनी पत्नी को छुड़ाया। किन्तु, उसके वदले में गाड़ी, वैल, व्यापारिक सामग्री, तीतर आदि सारी द्रव्य-सम्पत्ति वापस कर देनी पड़ी।

इस पाठ से निम्नांकित शिक्षाएँ मिलती हैं :

१. पारस्परिक व्यवहार में सीधी-सादी एवं सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। दाव-पेंच या छल-कपट से भरी हुई भाषा का प्रयोग करने से व्यक्ति की वही दुर्गति होती है, जो कि गन्धी-पुत्र की हुई। जव उसे गाड़ी में भरी हुई सामग्री एवं तीतर खरीदना था; तव उसे गाड़ीवाले से स्पष्ट पूछना चाहिए था कि गाड़ी में भरी हुई सामग्री एवं तीतर की क्या कीमत लोगे? किन्तु, उसने छल-कपट से भरी हुई भाषा में पूछा कि 'गाड़ी-तीतर का क्या लोगे?' वेचारे ग्रामीण गाड़ीवाले ने केवल सामग्री का मूल्य एक कार्षापण वता दिया और उसी के शव्दों को पकड़कर उसने सामग्री के साथ-साथ उतनी ही कीमत में गाड़ी और तीतर भी छीन लिया। अतः, गाड़ीवाले ने भी अवसर पाकर उसको ऐसी सीख दी कि आगे से वह छल-कपट से भरी भाषा का प्रयोग करना भूल गया।

२. गाँववाले भोले-भाले होते हैं। सीधी-सादी भाषा वोलते हैं। वे छल-कपट नहीं जानते। परिश्रमी होते हैं, सभी पर विश्वास कर लेते हैं तथा अपने साथियों के सुख-दुःख में निश्छल सहायता करते हैं। जव कि शहर के निवासी ग्रामीणों को मूर्ख एवं पिछड़ा हुआ ही मानते हैं। वे अहंकारी होते हैं और छल-कपट की भाषा वोलने में अपनी वुद्धिमानी समझते हैं। गन्धी-पुत्र इसका साक्षात् उदाहरण है। इस कहानी से यह स्पष्ट है कि भारतमाता का सही रूप शहरों में नहीं, ग्रामों में ही देखने को मिल सकता है; क्योंकि शहरों में जहाँ कृत्रिमता है, वहाँ ग्रामों में सहज स्वाभाविकता।

## कठिन शब्दों के अर्थ

गामेल्लओ = ग्रामीण
कम्हिइ = कहीं
परिवसइ = रहता था
सगडं = शकट, गाड़ी
काऊणं = करके
पंजरगयं = पिंजड़े में वन्दकर
नयरगओ = नगर में गया हुआ
पंजरए = पिंजड़े में
लवियं = कहा
काहावणेणं = कार्षापण से, रुपये से
हियसगडोवगरणो = गाड़ी एवं सामग्री के छीन लिये जाने पर
वइल्लं = वैल को
सागडिओ = गाड़ीवान
गहवइ = गृहस्थ, गृहपति
कयाइं = कभी
धण्णभरियं = धान्य से भरा
तित्तिरिं = तीतर को
वंधेत्ता = वाँधकर
गंधियपुत्तेहिं = गन्धी-पुत्रों द्वारा
विक्कायइ = विकेगा
मोल्लेणं = मूल्य देकर
लइयं = लिया
जोग-खेम-निमित्तं = योगक्षेम के लिए
आणिएल्लियं = लाये गये
घेत्तूणं = लेकर
कुलपुत्तएणं = कुलपुत्र से
अइसंधिओ = ठग लिया गया
वयणं = वचन को
गंतूण = जाकर
भंडभरिओ = सामग्री से भरा हुआ
गेण्हह = ले लो
हत्थेणं = हाथ से
घरिणी = गृहिणी, पत्नी
सव्वालंकारभूसिया = सभी अलंकारों से विभूषित
जीवलोगब्भंतरं = मनुष्यलोक में
सत्तुयादुपालियं = दो पैली सत्तू
सद्देण = शब्द से
जहावत्तं = जैसी वात थी
मज्झत्थ = मध्यस्थ
होऊण = होकर
सुओ = सुना
किलेसेण = क्लेश से
मोयाविओ = छुड़ाया
सुवहुएण = वहुत, प्रचुर
विक्कोसमाणो = चिल्लाता हुआ
कीस = किससे
साणुकंपेण = कृपापूर्वक
सोऊण = सुनकर

तुब्भेहिं = तुम्हारे द्वारा
वइल्लं = वैल को
सत्तुयादुपालियं = दो पैली सत्तू
गेण्हामि = लूंगा
पिययरी = प्रियतमा
दायव्वा = देना चाहिए
भविस्सइ = होगी
मन्निस्सामि = मानूंगा
आहूया = बुलाया
किमयं = यह क्या
संगहिओ = इकट्ठा हुआ
समागयजणेण = आये हुए लोगों से
ववहारनिच्छओ = न्याय का निश्चय
महिलियं = महिला को
अत्थेण = अर्थ से, धन से
परिदिण्णो = दिया

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में लिखें।

२. प्रस्तुत पाठ के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति पर समीचीन प्रकाश डालें।

३. भोले-भाले ग्रामीण गाड़ीवाले से शहर के युवक गन्धी-पुत्र ने किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया ? दोनों के संवाद को अपनी भाषा-शैली में चित्रित करें।

४. इस पाठ से मिलनेवाली शिक्षा पर एक टिप्पणी लिखें।

५. निम्नांकित शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें :

गहवइ, सत्तुयादुपालियं, सगडं, गहिया, पंजरगयं, नेमि, लद्धियं, संगहिओ, काहावणेणं, महिलियं, घेत्तुं, मोयाविओ, वइल्लं, सह, सामि, परिदिण्णो।

६. व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ लिखें :

अत्थि, सुओ, वयणं घेत्तुं, तीए।

# १०. पुत्तेहिं पराभविअस्स पिउस्स कहा
## ( पुत्रों द्वारा अपमानित पिता की कथा )

**कथासंक्षेप :** "जबतक पुत्रों को द्रव्य-सम्पत्ति प्रदान न की जाय, तभी तक वे वश में रहते हैं और द्रव्य-सम्पत्ति प्राप्त करते ही स्वच्छन्द होकर माता-पिता को दुःख देने लगते हैं।"

किसी नगर में एक वृद्ध रहता था। उसके चार पुत्र थे। उस वृद्ध ने सभी पुत्रों का विवाह कर, अपनी धन-सम्पत्ति को चार भागों में विभक्त कर, सभी के लिए बराबर-बराबर बाँट दिया और स्वयं वह निश्चिन्त होकर धर्माराधना में संलग्न रहकर समय व्यतीत करने लगा। कुछ समय के बाद स्त्रियों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण वे चारों पुत्र अलग-अलग रहने लगे। उस समय यही नियम बन गया कि वह वृद्ध प्रतिदिन बारी-बारी से एक-एक पुत्र के घर में जाकर भोजन करे। पहले दिन वह बड़े पुत्र के यहाँ भोजन करने के लिए गया। दूसरे दिन दूसरे पुत्र के घर गया। तीसरे दिन तीसरे पुत्र के यहाँ और चौथे दिन छोटे पुत्र के यहाँ गया। इसी प्रकार, उसका समय सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा।

कुछ दिनों के बाद जब पुत्रवधुओं को उस वृद्ध से धन-प्राप्ति की आशा न रही, तब उन्होंने उस वृद्ध को अपमानित करना प्रारम्भ कर दिया। वे पुत्रवधुएँ उससे कहने लगीं : "हे ससुर, पूरे दिन घर में क्यों बैठे रहते हो? क्या हमलोगों का चेहरा देखने के लिए ही बैठे रहते हो? स्त्रियों के समीप पुरुषों का रहना उचित नहीं। तुम्हें लज्जा भी नहीं आती, खा-पीकर अपने पुत्रों की दुकान पर क्यों नहीं चले जाते?" इस प्रकार, पुत्रवधुओं से अपमानित वह वृद्ध भोजन करने के बाद अपने पुत्रों की दूकान पर बैठने लगा।

कुछ समय के बाद पुत्रों ने भी उससे कहा : "हे वृद्ध, यहाँ किसलिए आ जाते हो, वृद्धावस्था में तो घर में रहना ही श्रेष्ठ है। तुम्हारे दाँत भी गिर गये हैं; आँखों की रोशनी भी चली गई है, शरीर भी काँपता रहता है; यहाँ दूकान में तुमसे हमारा कोई प्रयोजन भी पूरा नहीं होता, अतः घर पर ही

रहा करो।" इस प्रकार, पुत्रों से भी तिरस्कृत होकर वह अपने घर पर ही रहने लगा। घर पर पुत्रवधुओं ने पुनः उसका तिरस्कार किया। पोते-पोतियाँ भी कभी उसकी कछौटी खोल देते और कभी उसकी दाढ़ी-मूँछ नोचने लगते। इस प्रकार, विविध रूपों से उस वृद्ध की हँसी उड़ाई जाने लगी। पुत्रवधुएँ भोजन में रूखी-सूखी कच्ची रोटियाँ देने लगीं। इससे पीड़ित और दुःखी होकर वह वृद्ध अपने मन में सोचने लगा कि 'अव मैं क्या, करूँ, कैसे अपने जीवन का निर्वाह करूँ ?' इस प्रकार, दुःख का अनुभव करता हुआ वह अपने एक स्वर्णकार मित्र के पास गया और उसे अपने अपमान का दुःख कह सुनाया तथा उसके निवारण का उपाय भी उससे पूछा।

वह स्वर्णकार मित्र वोला : "हे मित्र, पुत्रों में विश्वास करके तुमने अपना समस्त धन उन्हें दे दिया, इसी से तुम्हें यह दुःख भोगना पड़ा है। इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अपनी भूल से जव तुमने यह काम किया है, तो फिर तुम्हें इसे स्वयं भोगना ही चाहिए।" तो भी, उसने मित्रता के कारण उसे एक उपाय वताते हुए कहा : "तुम जाकर अपने पुत्रों से इस प्रकार कहो कि 'मैंने अपने स्वर्णकार-मित्र के घर में रुपयों, दीनारों एवं आभूषणों से भरी हुई एक पेटी रख छोड़ी है। अवतक तो मैंने तुमलोगों को यह वात नहीं वताई, किन्तु अव मैं वहुत वूढ़ा हो गया हूँ, इसीलिए धार्मिक कार्यों द्वारा सप्त-क्षेत्रों में अपनी लक्ष्मी का विनियोग करके परलोक का मार्ग ग्रहण करूँगा।' इस प्रकार कहकर तुम पुत्रों को रात्रि में ही पेटी ले आने की आज्ञा देना। पेटी में तुम मुझसे प्राप्त ये सौ रुपये रख देना और आधी रात के समय वार-वार उन्हें सैंकड़ों और हजारों वार वजा-वजाकर गिनते रहना, जिससे तुम्हारे पुत्र यह मानने लगें कि 'हमारे पिता के पास अभी वहुत धन है।' इसी आशा से वे तुम्हारी पहले जैसी ही भक्ति करने लगेंगे। पुत्रवधुएँ भी पहले के समान ही तुम्हारा सम्मान करने लगेंगी। तुम सभी से यह कहना कि इस पेटी में वहुत-सा धन है, जिसे अलग-अलग पुत्र एवं पुत्रवधुओं के नाम लिखकर रख दिया गया है। मेरे मरने के वाद तुमलोग अपने-अपने नाम के अनुसार

निकालकर धन ले लेना।' इस तरह कहने के वाद धर्मकार्य करने के लिए तुम पुत्रों से धन लेकर धार्मिक कार्यों में खर्च करते रहना। किन्तु, मेरे इन सौ रुपयों को मत भुला देना, समय आने पर इन्हें लौटा देना।" वह वृद्ध मित्र द्वारा दी गई वुद्धि से सन्तुष्ट होकर अपने घर लौटा और रात्रि में ही पुत्रों द्वारा स्वर्णकार के घर से धन की पेटी मँगवाकर, उन सौ रुपयों को सैकड़ों, हजारों वार ठोक-ठोककर गिनने लगा। यह सुनकर पुत्र भी अपने मन में विचार करने लगे कि पिता के पास तो अभी वहुत धन है। यही वात उन्होंने अपनी-अपनी पत्नियों से भी कह सुनाई। उसी समय से वे पुत्रवधुएँ पुनः उस वृद्ध का वहुत सम्मान करने लगीं। वहुत अधिक स्नेह में पगकर वे 'पहले मैं भोजन कराऊँगी', 'पहले मैं भोजन कराऊँगी' इस प्रकार कहकर उसे अपने-अपने घर लाने लगीं, और स्वादिष्ट एवं सरस भोजन देने लगीं। उसके वस्त्रों को वे स्वयं धोने लगीं और पहनने के लिए शुद्ध धुले वस्त्र देने लगीं। इस प्रकार, उस वृद्ध का समय फिर सुख से वीतने लगा।

किसी एक दिन जव वह मरणासन्न हो गया, तव उसने अपने पुत्रों से कहा : "मेरी धर्म करने की इच्छा है, इसलिए मैं सातों तीर्थक्षेत्रों में थोड़ा-थोड़ा धन दान करना चाहता हूँ।" पुत्रों को मंजूषा में रखे हुए धन के मिल जाने की आशा तो थी ही, इसीलिए उन्होंने उसकी इच्छा के अनुसार उसे धन दे दिया। उस वृद्ध ने भी धन को मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए एवं अनेक सत्पात्रों में अपनी शक्ति के अनुसार दान कर दिया, और अपने परम मित्र स्वर्णकार को भी उसके वे सौ रुपये अपने हाथ से लौटा दिये। इस प्रकार, धार्मिक कार्यों में धन का व्यय करके उस वृद्ध ने मरणकाल में अपने पुत्रों एवं पुत्रवधुओं को वुलाकर पुनः कहा : "मैंने इस मंजूषा में सभी लोगों के नाम लिखकर धन रख दिया है, तुम लोग मेरे मरणोत्तर कृत्यों को पूरा करने के वाद अपने नाम से अंकित धन को ले लेना।" इस प्रकार कहकर वह वृद्ध समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्रों ने भी उसके मरणोत्तर कार्यों को पूरा किया और स्वजनों को मृत्यु-भोज भी दिया। वाद में, प्रचुर धनप्राप्ति की आशा से सभी ने मिलकर

जव उस मंजूषा को खोला, तभी उसमें अपने-अपने नाम के साथ एक-एक वस्त्र खण्ड में वँधे पत्थर के टुकड़े और सौ रुपये युक्तिपूर्वक वँधे हुए देखकर उन पुत्रों और पुत्रवधुओं ने चिल्लाकर कहा : "अरे, उस धूर्त्त वुड्ढे ने तो हमें ठग लिया ! किन्तु, यह ठीक ही है कि पितृभक्ति से विचलित एवं अविनीत हमलोगों के लिए तो यह सीख मिलनी ही चाहिए थी ।" यह सोचकर वे सभी दु:खी हो गये ।

**उपदेश :** धनप्राप्त पुत्रों से पिता के पराभव को सोचकर, वृद्धावस्था में उसी प्रकार कार्य करना चाहिए, जिससे सुखपूर्वक रहा जा सके ।

## कठिन शब्दों के अर्थ

विइण्णं = वितरण किया गया
वसंवया = आज्ञाकारी
सच्छंदा = स्वच्छन्द
दुक्खदायगा = दु:खदायक
एगवुड्ढस्स = एक वृद्ध का
चत्तारि = चार
थविरो = वृद्ध, स्थविर
परिणाविऊण = विवाह कराकर
नियवित्तस्स = अपनी सम्पत्ति का
चउब्भागं = चार भाग, चार हिस्से
अवमाणिज्जइ = अपमानित किया जाता
मुहाइं = मुख आदि
अप्पियं = दे दिया, अर्पित किया
धम्माराहणतप्परो = धर्माराधन में तत्पर
इत्थीणं = स्त्रियों का
वेमणस्सभावेण = वैमनस्य-भाव से
भिन्नघरा = अलग-अलग घर
पइदिणं = प्रतिदिन
पइघरं = प्रतिघर
भोयणाय = भोजन के लिए
वारगो = वारी
कणिट्ठस्स = छोटे का
अहिलं = अखिल, समस्त
अम्हाणं = हमारा
पासिउं = देखना
थीणं = स्त्रियों का
आगच्छेज्जा = आयें
गच्छिज्जसु = जाओ
वसणमेव = रहना ही
दंता = दाँत

पडिआ = गिर पड़े

अक्खितेयं = आँखों का तेज, आँखों की रोशनी

कंपिरमत्थि = काँपता है

पओयणं = प्रयोजन

निक्कासेइरे = निकाल दिया

कच्छुट्टियं = कछौटी को

मंसुं = मूँछ को

दाढियं = दाढ़ी को

करिसन्ति = खींचते हैं (थे)

भोत्तव्वं = खाना चाहिए

मित्तत्तेण = मित्रता के कारण

रुप्पय = रुपए

दीणार = दीनार

भूसणेहिं = आभूषणों से

भरिआ = भरकर

जराजिण्णो = जरा से जीर्ण

सद्धम्मकम्मणा = सद्धर्मकार्य से

सत्तक्खेत्ताईसुं = सात तीर्थक्षेत्रों आदि में

लच्छीए = लक्ष्मी का

विविह = विविध

पगारेहिं = प्रकारों से

रुक्खं = रूखा-सूखा

अपक्कं = कच्चा; अपक्व

रोट्टगं = बड़ी रोटी

पराभविज्ज = अपमानित होकर

दुहुमणुभवंतो = दुःख अनुभव करता हुआ

सुवण्णगारस्स = स्वर्णकार का

नित्थरणुवायं = निस्तार (उबरने) का उपाय

वीसासं = विश्वास

धणमप्पिअं = धन दे दिया

चोज्जं = आश्चर्य

सहत्थेण = अपने हाथों से

रणरणयारपुव्वं = झनझनाहट के साथ

गणेयव्वं = गिनना

मन्निस्संति = मानेंगे

अज्जावि = आज भी

नामाइं = नाम आदि

ठवियमत्थि = रखा है

नियनिय = अपने-अपने

नामवारेण = नाम के अनुसार

गहिअव्वं = ले लेना

धम्मकरणत्थं = धर्म करने के लिए

सद्धम्मकरणे = सद्धर्म करने में

विणिओग = विनियोग, खर्च

गिण्हिस्सं = ले लेना

गुणणेण = गुणा करने से

गणिति = गिनता है

विआरिंति = विचारते हैं।

सम्माणिंति = सम्मान देते हैं

निव्वंधेण = वँधने से, स्नेह से
अहमहमि गयाए = पहले मैं, पहले मैं, इस आग्रह से
साउं = स्वादिष्ट
सएव = सदैव
पक्खालिंति = धोते हैं
परिहाणाय = पहनने के लिए
वत्थाइं = वस्त्र आदि
नाइजणं = जाति के लोगों को
जेमाविऊण = जिमाकर
उग्घाडिंति = उघाड़ते हैं, खोलते हैं
नामजुत्तपत्तेहिं = नाम से युक्त कागजों से
वेढिए = वेष्टित, लिपटे
वंचिआ = वंचित हो गये, ठगे गये
अविणय = उद्दण्डता
पत्तवित्त = प्राप्त वित्तवाला
वावरियव्वं = खर्च करना
विस्सारियव्वं = भुला देना

गच्चा = जाकर
दससहस्साइं = दस हजार
सुपत्ताईसुं = सत्पात्रों में
जहसत्तीए = यथाशक्ति
नियहत्थेण = अपने हाथ से
रुप्पयसयं = सौ रुपये
पच्चप्पेइ = वापस करता है
जहनामं = यथानाम
मच्चुकिच्चं = मृत्युकर्म
धुविआइं = धुले हुए
आसन्नमरणो = शीघ्र मरण
पिअरस्स = पिता का
पयट्टेज्जा = प्रवर्त्तित होवे
सुहं = सुख को
तम्मज्झंमि = उसके बीच में
पाहाणखंडे = पाषाणखण्ड
पिउभत्ति = पिता की भक्ति
परंमुहाण = पराङ्मुख, विपरीत
दुहिणो = दुःखी

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में प्रस्तुत करें।
२. प्रस्तुत पाठ से मिलनेवाली शिक्षाओं पर प्रकाश डालें।
३. प्रस्तुत पाठ के आधार पर वृद्ध पिता एवं उसके पुत्रों तथा पुत्रवधुओं के व्यवहार की समीक्षा करें।

४. स्वर्णकार मित्र ने वृद्ध पिता की किस प्रकार सहायता की ? आप उसके द्वारा बताये हुए उपाय की प्रशंसा करेंगे अथवा निन्दा ? सरल भाषा में उत्तर दें।
५. कथा के विकास में स्वर्णकार-मित्र का स्थान निर्धारित करें।
६. निम्नांकित शब्दों का हिन्दी-रूप लिखें :

विइण्णं, लिहिऊण, वसंवया, गच्चा, वसणं, वावरियव्वं, हट्टे, आणाविऊण, अक्खितेयं, रुप्पगसयं, थेरो, साउं, मंसुं, अप्पणो, करिसंति, बोल्लाविऊण, रुक्खं, पच्छा, अपक्कं, वेढिए, चोज्जं, सुहं।

७. व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ लिखें :

जत्थ, तेणं कालेणं, पासिऊण, होत्था, तम्मि, पगढिज्जमाणे।

●

# ११. भारियासीलपरिक्खा

## ( भार्या के शील की परीक्षा )

**कथासंक्षेप :** अवन्ती-जनपद की उज्जयिनी नाम की नगरी में सागरचन्द्र नाम का एक सार्थवाह (बड़ा व्यापारी) रहता था। वह भागवत-सम्प्रदाय का उपासक था। उसके पुत्र का नाम था समुद्रदत्त।

पिता ने समुद्रदत्त को पढ़ाने के लिए एक परिव्राजक (संन्यासी) की नियुक्ति की। वह परिव्राजक कुसंस्कारी था। एक दिन समुद्रदत्त ने अपनी माँ के प्रति उसका असभ्य आचरण देख लिया। उसी दिन से स्त्रियों के प्रति विरक्त समुद्रदत्त ने अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर ली।

एक बार सागरचन्द्र व्यापार करने के उद्देश्य से सौराष्ट्र के गिरिनगर (गिरनार) नाम के नगर में गया। वहाँ अपने एक साथी की धनश्री नाम की सुन्दर कन्या को अपनी बहू बनाने का उसने निर्णय कर लिया और विवाह की तिथि पक्की करके अपने घर लौट आया।

उसने विवाह की वात समुद्रदत्त को न वताकर उसके साथियों से कही। वे साथी भी समुद्रदत्त को फुसलाकर गिरिनगर ले गये और वहाँ उन्होंने वलपूर्वक उसका विवाह धनश्री के साथ करा दिया।

समुद्रदत्त ने दवाव में आकर विवाह तो कर लिया, किन्तु इच्छा के विपरीत कार्य हो जाने तथा धनश्री के शील की परीक्षा करने के निमित्त वह अगले ही दिन विना किसी को वताये, वहाँ से चुपचाप भाग गया। उसके साथियों एवं ससुर ने उसकी वहुत खोजवीन की, किन्तु उसका कुछ पता नहीं चला।

इधर, समुद्रदत्त ने अज्ञात प्रवास में रहकर दाढ़ी-मूँछें वढ़ा लीं और अपना वेश वदल लिया। संयोग से उसके ससुर को एक माली की आवश्यकता थी और समुद्रदत्त ने गुप्त वेश में उसके यहाँ माली का काम करना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ समुद्रदत्त ने सभी को अपना नाम 'विनीतक' वताया।

विनीतक की चतुराई और कार्यदक्षता से सभी प्रसन्न थे। ससुर ने उस माली को धीरे-धीरे अपनी दूकान का; उसके वाद अपने घर के भाण्डार का संरक्षक वना दिया। फिर, अत्यन्त विश्वस्त जानकर उसे अपनी पुत्री के सेवक के रूप में नियुक्त कर दिया।

एक दिन धनश्री महल के छज्जे पर विनीतक से वातचीत कर रही थी। उसी समय एक डिण्डी (आरक्षी-पदाधिकारी) धनश्री को देख उसकी सुन्दरता पर मोहित हो गया और उससे परिचय करा देने के लिए वह विनीतक को डराने-धमकाने और फुसलाने लगा।

विनीतक तो धनश्री के शील की परीक्षा लेना चाह ही रहा था। उसने यह उपयुक्त अवसर समझा। अतः, उसने डिण्डी की इच्छा धनश्री को वताई। धनश्री ने पहले तो विनीतक को वुरी तरह डाँटा-फटकारा और उसे डिण्डी से कभी वातें नहीं करने का आदेश दिया। किन्तु, वाद में कुछ विचार करके उसने डिण्डी को अपनी अशोकवाटिका में वुलवाया। डिण्डी उसका सन्देश सुनकर वड़ा प्रसन्न हुआ।

धनश्री योगमद्य के साथ अशोकवाटिका में पहुँची और उसने डिण्डी को अतिशय मद्यपान कराया, जिससे वह बेहोश हो गया। तभी, धनश्री ने डिण्डी के ही खड्ग से डिण्डी का वध कर दिया।

विनीतक धनश्री के इस साहसी व्यवहार से मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। क्योंकि, उसे उसके शीलव्रत के पालन करने का प्रत्यक्ष उदाहरण मिल गया था। अतः, उसने अपना गुप्त वेश हटाकर अपने पूर्वरूप को प्रकट कर दिया और धनश्री साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

**लोककथा-तत्त्व :** 'भार्याशीलपरीक्षा' की कथा एक प्राचीन भारतीय सरस लोककथा है। इसे आचार्य संघदास गणी द्वारा रचित 'वसुदेवहिण्डी' नामक कथा-ग्रन्थ से आकलित किया गया है। यों तो, प्राकृत की सभी कथाओं में लोककथा के तत्त्व पाये जाते हैं, पर 'वसुदेवहिण्डी' की अधिकांश कथाएँ लोककथाएँ ही हैं। 'हिण्डी' शब्द का अर्थ ही है—घूमना-भटकना। अतः, यह शब्द इस बात का साक्षी है कि वसुदेव ने विविध यात्राएँ करके अपने जीवन में जो अनुभव संचित किये थे, उन्हीं अनुभवों को परम्परा से प्राप्त करके लेखक ने उक्त ग्रन्थ में आबद्ध किया था। 'वसुदेवहिण्डी' की समस्त कथाओं की समीक्षा तो यहाँ सम्भव नहीं, किन्तु उक्त भार्याशीलपरीक्षा की कथा, जो कि पाठ्यक्रम में निर्धारित है, उसी पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

प्रस्तुत कथा में अभिजात-कथा और लोककथा, इन दोनों प्रकार के कथा-तत्त्वों का मिश्रण हुआ है। अभिजात-कथा में सेठ, साहूकार और राजा-महाराजाओं के वैभव, उनके रहन-सहन और आचार-विचार-सम्बन्धी तत्त्व पाये जाते हैं। 'वसुदेवहिण्डी' में इन कथातत्त्वों का विन्यास संस्कृत के उपन्यास-ग्रन्थ 'कादम्बरी' और 'दशकुमारचरित' की शैली में ही हुआ है। अतः, 'भार्याशीलपरीक्षा' के कथातत्त्व अभिजात कथातत्त्व से ही सम्बन्ध रखते हैं।

लोककथा-तत्त्व की दृष्टि से इस कथा में यथानिर्दिष्ट तत्त्वों का समावेश हुआ है :

१. **लोकमानस का आदिम रूप :** इस कथा में लोकमानस का आदिम रूप प्रतिफलित हुआ है। प्राचीन मानव प्रकृति के जिन रहस्यों और चमत्कारों पर विश्वास करता था, इस कथा में भी वे चमत्कार वर्णित हैं। जिस प्रकार लोककथाओं में बालक जन्म लेकर कब बड़ा हो जाता है, यह पता नहीं लगता, उसी प्रकार, कुछ ही दिनों के बाद वेश बदलकर सागरदत्त जब ससुराल लौट आता है, तब ससुरालवाले उसे पहचान नहीं पाते। आश्चर्य तो यह है कि इतने परिमित काल में ही उसके बाल इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि जिससे वह पूरा संन्यासी ही प्रतीत होने लगता है। किन्तु, यह कैसे सम्भव है? अतः, लोकमानस के आदिम रूप की इस कथा में स्वाभाविक झलक मिलती है।

२. **अप्राकृतिक घटनाएँ :** यथा; शीलवती नारी के रूप में रहकर भी धनश्री का एक अज्ञातकुलशील भृत्य से हँस-हँसकर वार्त्तालाप करना, उसे विश्वासी समझना आदि।

३. **श्रद्धा :** यथा, विवाह के तुरन्त बाद भाग जाने पर भी धनश्री का अपने पति के प्रति आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास का पूर्ववत् बना रहना।

४. **उपदेशात्मकता :** यथा, डिण्डी द्वारा बार-बार बुलाये जाने पर भी विनीतक को धनश्री द्वारा उसके पास न जाने का उपदेश देना। इसी प्रकार, अन्य कथातत्त्व भी प्राप्त होते हैं। जैसे :

५. कथाशैली की प्राचीन रूढ़िबद्धता;
६. पात्रों का प्रेय से श्रेय की ओर प्रस्थान;
७. कुतूहल और मनोरंजन;
८. स्वस्थ शृंगार-भावना;
९. रहस्यात्मकता;
१०. नारी के छल-कपटमय आचरण और
११. अद्भुत तत्त्व।

इनसे यह स्पष्ट है कि 'भार्याशीलपरीक्षा' एक लोककथा है।

**चरित्र-चित्रण :** 'भार्याशीलपरीक्षा' कथा की प्रमुख नायिका धनश्री है। उसका जैसा अद्‌भुत चित्रण इस कथा में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र शायद ही प्राप्त हो सके। उसमें वे सभी गुण मिलते हैं, जो एक भारतीय नारी के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य माने गये हैं। पतिभक्ति, आत्मविश्वास, निर्भीकता, दृढशीलता, कार्यकुशलता, चारित्रिक उत्कर्ष, नैतिक बल, व्यवहारज्ञता आदि उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

प्रस्तुत कथा में धनश्री उस समय रंगमंच पर उपस्थित होती है, जब कथा का पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है। धनश्री से उसका सम्बन्ध जोड़ने के लिए उसे इसकी भूमिका माना जा सकता है। रंगमंच पर आने के बाद फिर वह अन्त तक कथा में वर्णित समस्त घटनाओं पर छाई रहती है। उसके चरित्र-सम्बन्धी तथ्यों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

**पतिव्रता धनश्री :** वह एक धनी सार्थवाह की बेटी है तथा सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं में पलकर सर्वगुणसम्पन्न बनी है। उसका पिता उसका विवाह उज्जयिनी के एक ऐसे सार्थवाह-पुत्र के साथ सुनिश्चित कर देता है, जिसे उसने कभी देखा-सुना भी नहीं था। फिर भी, वह कन्या उसे ही अपना सर्वस्व मानने लगती है। यह उसके पतिव्रता होने का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

**कष्टसहिष्णु धनश्री :** समुद्रदत्त धनश्री के घर पहुँचता है और दोनों का विवाह कर दिया जाता है। जब वे नव वर-वधू सुहागरात्रि के समय मिलते हैं, तभी अवसर पाकर समुद्रदत्त धनश्री को चकमा देकर भाग जाता है। निस्सन्देह, यह दुर्घटना भारतीय नारी के सुकोमल हृदय के लिए घोर वज्रपात से कम नहीं, किन्तु इस वेदना को वह अपने अन्तस्तल में छिपाये हुए जिस किसी प्रकार कठिनाई से समय व्यतीत करती है। यहाँ उसकी कष्टसहिष्णुता चरम सीमा पर पहुँचती दिखाई पड़ती है।

**शीलवती धनश्री :** दाढ़ी-मूँछ, नख, केश आदि बढ़ाये हुए दरिद्र के वेश में जब समुद्रदत्त धनश्री के पिता से नौकरी की याचना करता है और उसे नियुक्त भी कर लिया जाता है, तब वहाँ समुद्रदत्त विनीतक के नाम से जाना

जाता है। वह अपने मधुर एवं विनोदी स्वभाव, ईमानदारी, कार्यकुशलता आलस्यहीनता आदि गुणों के कारण परिवार के सभी लोगों के साथ-साथ धनश्री का भी विशेष विश्वासपात्र बन जाता है। विनीतक से घनिष्ठता के कारण धनश्री के चरित्र-स्खलन के लिए पर्याप्त अवसर उपस्थित हो सकते थे; किन्तु, वहाँ भी वह निष्कलंक रहती है, यह उसके चरित्र की विशेषता है।

**निर्भीक एवं साहसी धनश्री** : उज्जयिनी का एक डिण्डी (आरक्षी-पदाधिकारी) धनश्री के सौन्दर्य पर आसक्त हो जाता है। वह विनीतक (समुद्रदत्त) को माध्यम बनाकर अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता है। जब डिण्डी अपनी उतावली के कारण विनीतक को अधिक कष्ट देने लगता है, तब धनश्री से यह सब छिपा नहीं रह पाता। अतः, धनश्री इस काँटे को शीघ्र ही निकाल डालने का संकल्प कर लेती है। वह विनीतक द्वारा सन्देश भेजकर उस डिण्डी को अपनी अशोकवाटिका में बुलवाती है और वहाँ समाज के कलंक एवं विषय-वासना के कीट-स्वरूप उस डिण्डी का निर्ममता के साथ वध कर डालती है।

वध करना यद्यपि अधम कोटि का काम है, तथापि अपने शील-संरक्षण एवं अपने भृत्य (विनीतक) के कुशल-क्षेम के लिए वह उस कृत्य को भी आवश्यक समझती है। इस घटना से धनश्री की व्यवहारकुशलाता एवं साहस की सूचना मिलती है।

यदि धनश्री चाहती, तो डिण्डी की शिकायत अपने पिता अथवा राजा से करके उसे दण्डित करा सकती थी, लेकिन इसमें डिण्डी की शिकायत के साथ ही स्वयं उसके चरित्र की बदनामी भी सम्भव थी, इसीलिए उसने वह साहसिक कार्य अपने हाथों से ही कर डालना उचित समझा। इस प्रसंग में उसका आत्मविश्वास, दूरदर्शिता, व्यवहारज्ञता, निर्भीकता एवं साहस प्रशंसा के योग्य है।

इस प्रकार, धनश्री का चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक अतिशय उदात्त और अवदात रूप में प्राप्त होता है। भारतीय नारी का तो पति ही सर्वस्व है, उसके प्रति आत्मसमर्पण ही उसके जीवन का परम लक्ष्य और सर्वोत्कृष्ट ऋद्धि-सिद्धि है तथा पति का वियोग ही उसके जीवन का घोर अन्धकार एवं महान् दुर्भाग्यपूर्ण

संकट है। ऐसी स्थिति में भी धनश्री अत्यन्त दुःखी रहने के बावजूद रुदन और विलाप के साथ हाय-हाय करते हुए आकाश को सिर पर नहीं उठाती। अपनी इस कष्टसहिष्णुता से वह पाठकों की सहानुभूति बरबस स्वायत्त कर लेती है।

**समुद्रदत्त की संक्षिप्त चारित्रिक विशेषताएँ :**

१. पलायनवादी—जो सांसारिक भोगों को न भोगता है और न छोड़ता ही है।
२. प्रारम्भ में गृहस्थी के प्रति अनुत्तरदायी, किन्तु अन्त में उसकी इस दशा में सुधार हो जाता है।
३. प्रत्युत्पन्नमति—परिस्थितियों के अनुसार बुद्धि का स्फुरण।
४. परीक्षक एवं कष्टसहिष्णु—धनश्री के शील की परीक्षा के लिए वह स्वयं को कष्ट में डाल लेता है।
५. कर्त्तव्यशीलता।

## कठिन शब्दों के अर्थ

रिद्धित्थिमियसमिद्धा = ऋद्धि और समृद्धि से सम्पन्न
दसदिसिपयासो = दसों दिशाओं में प्रसिद्ध
अत्तओ = आत्मज
ठवइ = रखा
अण्णपासंडियदिट्ठी = अन्य धर्मों की पाखण्डपूर्ण दृष्टि
हवेज्जा = हो जाय
फलगं = लेखनपट्टिका, स्लेट
असब्भ-आयरमाणीं = असभ्य आचरण करते
वीराग = वैराग्य
एयाओ = ये (स्त्रियाँ)
निव्वंधं करेइ = निश्चय करता है
समत्तकलस्स = कलाप्राप्त (समुद्रदत्त) के
दारियाओ = लड़कियाँ
वरेइ = पसन्द करता है
पडिसेहेइ = नापसन्द, निषेध कर देता है
वच्चइ = बीतता रहा
सुरट्ठदेसं = सौराष्ट्र देश को
ववहारेणं = व्यापार के निमित्त
धूयं = पुत्री को
पडिरूवेण सुंकेणं = उचित शुल्क (कन्यानिरीक्षण-शुल्क) के साथ
अन्नायं = अज्ञात

तिहिगहणं काऊण = तिथि निश्चित करके
भंडं = धन (माल)
सवयंसो = मित्रों-सहित, साथियों-सहित
विणिओगं = लेनदेन
वोत्तूण = कहकर
ठाइऊणं = ठहरकर
पेसिओ = भेजा, प्रेषित किया
आवासिया — ठहराया
रत्तीए = रात में
ववएसेणं = वहाने से, व्याज से
पइरिक्कं = एकान्त
चम्मट्ठिं = चकमा
दाऊण = देकर
वयंसाण = साथियों के
सुत्तो = सो गया
पभायाए रयणीए = रात बीतने और सुवह होने पर
अदिट्ठओ नट्ठो = नजर वचाकर गायव हो गया
मग्गिओ = खोजा
आपुच्छिऊण = अनुमति लेकर
हिंडिऊण = भ्रमण करके
कप्पडियवेशच्छण्णो = भिखमंगे का प्रच्छन्न वेश धारण करनेवाला, कपट-वेशधारी

आरामगओ = वगीचे में उपस्थित
आरामकम्मकरो = उद्यानकर्म करनेवाला, माली
भत्ति = वेतन
भईए = वेतन से
तुट्ठीदाणं = तुष्टिदान
देज्जह = दें, देंगे
पडिस्सुए = स्वीकृति देने/मिलने पर
आरद्धो = आरम्भ
रुक्खायुव्वेय = वृक्षायुर्वेद
सव्वोउय = सभी ऋतुएँ
आय-वय = आय-व्यय
अच्छंतेण = रहते हुए
आवारीए = दूकान में
ठवियो = रखा
आपणे = दूकान में
गंधजुत्ति = इत्र तैयार करने की कला
निउणत्तणेन = नैपुण्य के कारण
वीससणिज्जो = विश्वसनीय
हीरइ = हरण करा लेगा, वुलवा लेगा
सद्दावेऊण = वुलवाकर
आणा = आज्ञा
वीसंभट्ठाणिओ = विश्वसनीय
डिंडी = आरक्षी-पदाधिकारी
पुव्वावरण्हसमए = दिन के अन्तिम प्रहर में
अट्टालवरगया = ऊँची अटारी पर वैठी

तंबोलं समाणयंती = पान चबाती हुई
ण्हाय-समालद्धो = स्नात और अलंकृत
निच्छूढं = फेंका गया; छोड़ा गया
समागमुस्सुओ = समागम के लिए उत्सुक
संवुत्तो = हो गया
सव्वप्पवेसो = सर्वत्र प्रवेशवाला
उवतप्पामि = पास जाता हूँ, सन्तुष्ट करता हूँ
एयं = यह
संलत्तं = कहा, बोला
विइयदिवसे = दूसरे दिन
धत्तीहं = उपाय ढूंढ़ रहा हूँ
संगहियं करेत्ता = सम्मान करके
विसज्जिओ = विदा किया
विमणा = उदास
तुण्हिक्को = चुपचाप
आमं = हाँ
चित्तरक्खं = मनोभाव की रक्षा
करेंतीए = करती हुई
पओसे = शाम में, साँझ होने पर
कयं = किया
सेज्जं पत्थरेऊण = बिछावन बिछाकर
जोगमज्जं = योगमद्य (नशीली चीजों को मिलाकर बनाई गई शराब)
गिण्हिऊण = लेकर
अच्छइ = प्रतीक्षा करने लगी
तस्सेव संतियं = उसी के पास स्थित
कड्ढिऊण = खींचकर
पच्छा = बाद में, पश्चात्
अणत्थं = अनर्थ
मरिसाविया = क्षमा माँगी
निहिओ = गाड़ दिया, डाल दिया
सुहासणवरगया = श्रेष्ठ सुखासन पर बैठी
दिन्ना = दी गई हो
वच्चामि = जाता हूँ
गवेसित्ता = खोजकर
कयंसुपाएहिं = अश्रुपात करके
उवगूहिओ = आलिंगन किया
लेहो = लेख, चिट्ठी
सद्धिं = साथ
गूहेंतो = छिपाते हुए
अप्पाणं = अपने को
दरिसेइ = दिखाता है
विज्झवेऊण = बुझाकर
पच्छण्णदीवं = छिपे हुए दीपक को
ठवेऊणं = रखकर
णाए = इस (स्त्री) द्वारा
संवादितं = बता दिया

## गृहकार्य के लिए अभ्यास-प्रश्न

१. 'भारियासीलपरिक्खा' शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करते हुए प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु अपनी भाषा-शैली में प्रस्तुत करें।

२. 'भारियासीलपरिक्खा' नामक कथा में उपलब्ध लोककथा-तत्वों पर संक्षिप्त प्रकाश डालें।

३. धनश्री का चरित्र-चित्रण करें।

४. समुद्रदत्त एवं सागरदत्त के चरित्रों पर अलग-अलग संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखें।

५. निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी-रूप लिखें :

जणवओ, करेमाणो, नयरी, फलगं, तस्स, निब्वंधं, इब्भो, भज्जा, नट्ठो, दारगं, भत्ती, परिव्वायगस्स, पसाद, हवेज्ज, नामधेयं, डिट्ठी।

६. व्याकरणबोधक टिप्पणियाँ लिखें :

भारिया, ठवियो, पविट्ठो, पत्ता, पच्छा, तीए, होमि, कओ, दिण्णं, कायव्वो, सुणिऊण, नीसरिऊण।

# शुद्धिपत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ४ | २० | जाांति | जायंति |
| ६ | ४ | वहूए | वहूए |
| ८ | ११ | उत्त | उत्तं |
| १७ | ६ | निरवेढण | सिरवेढण |
| १९ | १ | गाभिल्लओ | गामिल्लओ |
| ३१ | १२ | मत्तिस्स | मंविस्स |
| ३९ | १ | दिट्ठुतं | दिट्ठंतं |